नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 118 • वर्ष 10 • अंक 3
अप्रैल 2008 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

आसमान छूती महंगाई से ग़रीब बदहाल
पूँजीपति मालामाल और सरकार बजाये गाल

सम्पादक

खाने-पीने की चीजों और जीने के लिए ज़रूरी दूसरी चीजों की कीमतों में लगी आग ने करोड़ों ग़रीबों के चूल्हों की आग ठण्डी कर दी है। ग़रीबों के पेट में धधकती आग के बीच पूँजीपति अपने मुनाफ़े का हिसाब-किताब लगाने में मशगूल हैं और केन्द्र सरकार महंगाई रोकने के नाम पर थोथी कवायदें कर रही है। बढ़ती महंगाई से यूपीए सरकार की अगुवा कांग्रेस और उसके अन्य सहयोगियों के माथे पर चिन्ता की जो लकीरें नज़र आ रही है उसका कारण ग़रीबों की परेशानियाँ नहीं है। उनकी चिन्ता केवल यह है कि पिछले बजट में किसानों की कर्ज़माफी आदि की जो लोकलुभावन घोषणाएँ हुई हैं उसका फ़ायदा हाथ से फिसलता नज़र आ रहा है। दूसरी ओर विपक्षी चुनावबाज महंगाई की आग में अपनी-अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकने की तैयारियों में जुट गये हैं।

इस बार केंद्रीय वित्त मंत्री पी. चिदंबरम द्वारा बजट पेश करने के चार-पाँच दिनों बाद ही लोगों को बजट की मार झेलनी पड़ी। खाना पकाने का तेल जो 50-55 प्रति लीटर मिलता था अब 75-80 का आंकड़ा छू रहा है। देश के बहुत से हिस्सों में सबसे ख़राब क्वालिटी के चावल जो 11 रुपये प्रति कि.ग्रा. की कीमत पर बिक रहे थे अब 16-17 रुपये में मिल रहे हैं। मिट्टी के तेल ने तो आग ही लगा रखी है। ये अपनी पहले की कीमत से 3 गुना ज़्यादा पर बिक रहा है। 9-10 रुपये प्रति लीटर की बजाए अब इसकी कीमत है 30-32 रुपये प्रति लीटर। आटे की 10 किलो की बोरी जो 100-110 रुपये में मिलती थी अब 150 रुपए की है। गेहूँ की कीमत पिछले दिनों 750 रुपए प्रति क्विंटल से सीधे 1000 रुपये प्रति क्वंटल पर छलांग लगा गई है। दालों की कीमतों में भी 8-10 रुपये प्रति कि. ग्रा. की वृद्धि दर्ज हो चुकी है। पिछले दिनों में लोहे व पेट्रोल की कीमतों के जो रेट बढ़े हैं उसकी मार भी ग़रीब मेहनतकशों को ही झेलनी पड़ रही है। भले ही मध्यवर्ग को सस्ती कारें उपलब्ध करवाई जा रही हों लेकिन एक मज़दूर के लिए आज एक साइकिल ख़रीद पाना भी असंभव सा होता जा रहा है। आज अच्छा-खासा ओवर टाइम लगाने के बाद भी एक मज़दूर के लिए इतनी महंगाई में खाने-रहने, पहनने, परिवहन और सेहत की बुनियादी जरूरतें पूरी कर पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन सा लगने लगा है। स्टोव में महज हवा भरने से तो पानी उबल नहीं जाएगा। कमरे का किराया आख़िर कब तक रोका जा सकता है? कपड़ों को कब तक चिथड़ा हो जाने से बचाया जा सकता है? बीमारी में कब तक बिना दवा-इलाज के सांस चलती रह सकती है?

ग़रीबों की ज़िन्दगी की बदहाली के इस आलम में भी सरकारी अर्थशास्त्रियों की मानें तो देश की अर्थव्यवस्था अभूतपूर्व रूप से मजबूत हो रही है। भारत के दुनिया की एक बड़ी ताकत के रूप में उभरने की बातें कही जा रही हैं। देश के उद्योगपति देश के बाहर अनेक देशों में पूँजी लगा रहे हैं। दुनिया के सबसे अमीर व्यक्तियों की लिस्ट में कई भारतीयों का नाम लिखा जा चुका है। कारें सस्ती करते हुए देश के पूँजीपति कह रहे हैं कि वे लोगों के सपने साकार करना चाहते हैं। मोबाइल कम्पनियाँ अपने रेट कम करती जा रही हैं। इस पूरे माहौल में खाते-पीते सम्पन्न मध्यवर्गी लोग तो देश की

(पेज 6 पर जारी)

असली खुनचुसवा कौन है?

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर। शाहपुर थाना क्षेत्र में बेबस ग़रीबों को बन्धक बनाकर उनका खून निकालकर निजी नर्सिंग होमों एवं सरकारी अस्पतालों को बेचने वाले गिरोह के भण्डाफोड़ ने सभी संवेदनशील लोगों को झकझोरकर रख दिया है। मामले की छानबीन में शुरुआत में ही जो तथ्य सामने आये हैं उनके मुताबिक खून के इस धन्धे में महानगर के कई निजी नर्सिंग होमों के संचालकों के साथ ही पुलिस एवं प्रशासन की मिली भगत के संकेत भी मिले हैं। जैसा कि ऐसे हर मामले में होता है मीडिया और कुछ सामाजिक संगठनों द्वारा हल्ला मचाये जाने के बाद पुलिस प्रशासन अपराधियों की धर-पकड़ के नाम पर इस खूनी कारोबार से जुड़े सफ़ेदपोश लोगों को बचाने की कवायदों में जुट गया है।

अगर पुलिस-प्रशासन पूरी ईमानदारी से काम करते हुए असली गुनाहगारों को बेनकाब कर डाले तो भी असली खूनचुसवा को सजा नहीं मिल सकती। यह असली खुनचुसवा कौन है? इसे जानने के लिए देखें पेज 12 पर प्रकाशित सामग्री।

मई दिवस ज़िन्दाबाद! दुनिया के मज़दूरो एक हो!

मई दिवस कार्यक्रम

लुधियाना

आम सभा एवं प्रदर्शन
1 मई 2008
सुबह 9.00 बजे से
बर्धमान मिल
(चण्डीगढ़ रोड)के पीछे
एम.आई.जी. फ्लैट्स के पास

नोएडा

आम सभा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम
1 मई 2008
सायं 5.00 बजे से
सेक्टर 9 एवं 10 की झुग्गी
के बीच में

मज़दूर आन्दोलन को ट्रेड यूनियन दलालों के चंगुल से बाहर निकालो!
कार्यक्रम में अधिक से अधिक संख्या में पहुँचकर मई दिवस की क्रान्तिकारी-परम्परा को आगे बढ़ाने का संकल्प लो!

बिगुल मज़दूर दस्ता **नौजवान भारत सभा**

छठे वेतन आयोग की सिफारिशें
मज़दूर विरोधी सिफारिशों का पुलिन्दा

विशेष संवाददाता

दिल्ली। छठे वेतन आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी. एन. श्रीकृष्ण ने सरकार को अपनी सिफारिशों का जो भारी-भरकम पुलिन्दा सौंपा है वह चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों व तृतीय श्रेणी के तकनीकी कर्मचारियों के लिए अन्यायपूर्ण सिफारिशों का पुलिन्दा है। आयोग द्वारा सिफारिश किये गये नये वेतनमान से हालाँकि अफ़सर और बाबू भी नाखुश नज़र आ रहे हैं लेकिन वास्तविक अन्याय तकनीकी एवं आर्टीजन कर्मचारियों के साथ हुआ है।

वेतन आयोग ने अपनी सिफारिशों के ज़रिये मज़दूर वर्ग के ऊपर जो सबसे बड़ा हमला बोला है वह है ग्रुप 'डी' का ग्रुप 'सी' में विलय। इससे ग्रुप 'डी' कर्मचारियों के लगभग नौ लाख पद खत्म हो जायेंगे। इस कैटेगरी के खाली पड़े एक लाख पद तो आयोग की सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार करने के साथ ही ख़त्म हो जायेंगे। बाकी लगभग आठ लाख पदों में से हाईस्कूल पास कर्मचारियों का ग्रुप 'सी' में प्रमोशन हो जायेगा और बाकी कर्मचारी जैसे-जैसे रिटायर होते जायेंगे वे पद समाप्त होते जायेंगे। उन पर नयी भर्तियाँ नहीं होंगी।

वेतन आयोग ने केन्द्रीय सरकार के अफ़सरों को निजी क्षेत्र में भागने से रोकने के लिए उन्हें ऊँची तनख्वाहें देने की सिफारिशें की है। अगर सिफ़ारिशें लागू हो गयीं तो मंत्रिमण्डलीय सचिव को नब्बे हजार रुपये प्रतिमाह मिलेंगे और सचिव को अस्सी हजार रुपये प्रतिमाह। न्यूनतम वेतन के रूप में 6600 रुपये की सिफारिश की गयी है। इस तरह न्यूनतम और अधिकतम वेतन का अनुपात बढ़कर 1:12 हो गया है। अब तक यह अनुपात 1:10.7 था। वेतन आयोग की इन सिफारिशों से भी ज़ाहिर है कि देश की मेहनतकश आबादी का खून-पसीना किस तरह पूँजीपतियों की तिजोरियों को भरने के

(पेज 6 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

अनुभव से मिला सबक

लुधियाना जी टी रोड पर स्थित रालसन (रालको) इंडिया लिमिटेड कारखाना साइकिल पार्ट का उत्पादन करता है। इसमें लगभग 4000 मज़दूर कार्यरत हैं। लेकिन उनका कोई संगठन नहीं था और न ही कभी संगठन बनाने की कोशिश की गई। लेकिन जब लुधियाना के साइकिल इंडस्ट्री में तमाम बड़ी कंपनियाँ-हीरो, एवन, नोवा, मोगल सन्ज, इवलाइन इण्टरनेशनल हड़ताल पर थीं तो उसका असर इस कम्पनी के मज़दूरों पर भी पड़ा और मज़दूर अपने दमन-शोषण के खिलाफ संगठन बनाने के लिए खड़े हो गए।

फैक्ट्री के नियम-कानून इस प्रकार थे-

1. मज़दूरी-न्यूनतम वेतन लागू नहीं।

2. कार्य समय-कागजों पर आठ घण्टा और ड्यूटी 12 घण्टा से भी ज़्यादा। बीच में आधा घण्टा लंच, बाकी समय जी-तोड़ मेहनत। एवज में दो हज़ार से ढाई हज़ार वेतन मिलता था।

कोई सामाजिक सुविधा नहीं, पी. एफ. और ईएसआई लागू लेकिन इक्का-दुक्का मज़दूरों को छोड़ दिया जाये तो किसी के पास ईएसआई कार्ड नहीं। कोई साप्ताहिक छुट्टी नहीं। यदि कोई छुट्टी मिलती भी थी तो उसके भी पैसे नहीं मिलते थे। वेतन मिलने का समय कागज़ पर तो सात तारीख था लेकिन 12 तारीख तक मिलता था। छुट्टी करने पर गाली, थप्पड़ तो आम बात थी। मज़दूरों के साथ जानवरों जैसा सलूक किया जाता था और यह अभी तक जारी है। इस लूट, दमन, शोषण, अत्याचार के खिलाफ मज़दूरों ने अपनी आवाज़ उठायी 21 जनवरी 2004 को। एक सेक्शन के कर्मचारियों ने जिनकी संख्या सवा सौ-डेढ़ सौ थी हड़ताल करने का फैसला किया और हड़ताल पर चले गए । उनका नेतृत्व मैं खुद कर रहा था लेकिन हमारे पास अनुभव की कमी थी। जब सभी मज़दूरों ने घर-घर घूम कर मज़दूरों को बताने की कोशिश की कि हमें हड़ताल करके अपनी माँग मनवानी चाहिए तो फैक्ट्री के मैनेजमेंट के आदमियों ने कुछ गुण्डों को साथ लेकर मज़दूरों पर हमला बोल दिया। जब मज़दूरों ने उनका जवाब दिया तो उन लोगों ने पुलिस का साथ लिया। मज़दूरों के ऊपर लाठियाँ भाँजीं गईं और मज़दूर अगुवाओं पर झूठे पुलिस केस बनाए गए और उनकी गिरफ़्तारियाँ हुईं। फिर भी मज़दूरों ने हार नहीं मानी और मज़दूरों ने फैक्ट्री को 48 घण्टे बन्द कर दिया और माँग की कि हमारे अगुवों को छोड़ा जाए लेकिन उनको जेल भेजा जा चुका था।

ट्रेड यूनियनों का रोल–हमारे जेल जाने के बाद अनुभवहीन मज़दूर नेतृत्व राष्ट्रीय जनता दल के लेबर विंग के पास गया और समझौता हो गया। राष्ट्रीय जनता दल के जिला अध्यक्ष ने पार्टी का परिचय पत्र बनाने और मज़दूर अगुवों को छुड़ाने के नाम पर मज़दूरों से चार-पाँच लाख रुपए कमाए लेकिन न ही कोई कार्ड बना और न ही अगुवों को छुड़ाया गया। 29 जनवरी को समझौता हुआ कि हड़ताल पर गए कर्मचारी लौट आएँ, कुछ माँगों को मानने की बात की गई, आश्वासन के बाद सारे कर्मचारी लौट गए। मज़दूरों के खिलाफ इन धाराओं-307, 353, 386, 188, 119, 149 के तहत दर्ज हुआ। काम पर लौटे मज़दूरों के साथ ज़्यादती शुरू हो गयी। चेतन मज़दूरों की छँटनी शुरू हुई। गुण्डों द्वारा मारा पीटा जाने लगा। लेकिन यह ज़्यादा दिन नहीं चला। मज़दूर फिर भड़के। सोलह फरवरी को फिर फैक्ट्री के अन्दर और बाहर हड़ताल पर बैठ गए लेकिन फैक्ट्री ने राष्ट्रीय जनता दल के प्रदेश अध्यक्ष का सहारा लिया और मज़दूरों को फैक्ट्री से बाहर ले गए। फिर शुरू हुआ लेबर दफ़्तर का दौर। रोज़ मज़दूर 4 किलोमीटर दूर स्थित लेबर दफ़्तर आ जाते और शाम को वापिस चले जाते। यह सिलसिला 15 दिनों तक चला लेकिन मज़दूरों को काम पर नहीं रखा गया। फिर मज़दूरों ने राष्ट्रीय जनता दल का साथ छोड़ा और सीटू के पास चले गए। तब तक जेल गए मज़दूर अगुवा जमानत पर आ गये। तीन-चार दिन में ही फैक्ट्री को झुकना पड़ा और और मज़दूरों को वापिस बुलाना पड़ा।

संगठन बनता देख मालिकों के कान खड़े होने लगे और सोलह मार्च को मज़दूरों के ऊपर हमला करवाया गया। आरोप मज़दूरों पर लगा और लगभग 300 मज़दूरों पर केस दर्ज करवाया। इस तरह संगठन को कुचल दिया गया। मज़दूर अगुवाओं को काम पर नहीं रखा गया जिसका नतीज़ा मज़दूरों को भुगतना पड़ा। फिर सीटू ने भी हाथ खड़े कर दिये। फिर कुछ

(पेज 4 पर जारी)

क्या हमारी ज़िन्दगी ऐसे ही घिस-पिट कर गुज़र जायेगी?

मैं एक मज़दूर हूँ। एक स्टील फैक्ट्री में पिछले दस साल से काम करता हूँ। मुझे आठ घण्टे का 2200 रुपया मिलता है। लेकिन मेरे पास समस्या बहुत है जिसका मैं 2200 रुपये में समाधान नहीं कर सकता हूँ।

दोस्तो, मैं बताना चाहता हूँ कि समस्या सिर्फ़ हमारी ही नहीं है। यह समस्या सभी मज़दूरों की है। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि कोई 10 हज़ार, कोई 5 हज़ार, कोई 2 हज़ार, तो कोई 15 सौ ही कमाता है। लेकिन जो 10 हज़ार भी कमाता है वो भी अपनी समस्या दूर नहीं कर सकता क्योंकि महंगाई इतनी है कि शाम को फ़ैक्ट्री से पैसा मिला और सुबह होते ही ख़त्म हो जाता है। आख़िर ऐसा क्यों होता है हम लोगों के साथ? हम लोग इतना मेहनत करते हैं फिर भी अपनी समस्या दूर नहीं कर पाते हैं। इस धरती पर और भी इंसान हैं जो अमीरी के ताज पहने हुए हैं। उनके पास सब कुछ है। रुपया, पैसा, धन, दौलत, अच्छा घर, अच्छी गाड़ियाँ, फैक्ट्रियाँ। उन्हें तो किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। वो भी इंसान हैं और हम भी इंसान हैं। लेकिन ऐसा क्यों है कि हम दिन रात मेहनत करते हैं पर ग़रीब हैं और वो अमीर हैं। वो काम नहीं करते सिर्फ कुर्सी लगाकर हुक्म चलाते हैं। दोस्तो, हम लोगों के पास ये सब इसलिए नहीं कि हम लोग अपने हक़ के बारे में सोचते ही नहीं हैं। हम लोग क्या करते हैं। सुबह उठे, खाना बनाया-खाया, जो बचा डिब्बे में भरा और चल दिए फैक्ट्री। दिनभर काम किया। शाम को छुट्टी हुई। कमरे पर आये, सूखी रोटी खायी और सो गये।

एक हफ़्ते बाद एक सण्डे छुट्टी मिली पर छुट्टी के दिन हम लोग करते क्या हैं? किसी ने दारू पी, किसी ने टीवी देखा, कोई ताश खेला तो किसी ने लाटरी का जुआ खेला। लेकिन अपने हक के बारे में हम नहीं सोचते। हम लोग कितनी बड़ी गलती करते हैं कि अपनी ही ज़िन्दगी के बारे में नहीं सोचते हैं। लेकिन दोस्तो, हमें और आप लोगों को भी सोचना पड़ेगा और कुछ अलग काम करना पड़ेगा। जो हमारी ज़िन्दगी में भी खुशियाँ लाए।

लेकिन मज़दूर साथियो, सवाल ये है कि हम लोग क्या करेंगे कि खुशियाँ ही खुशियाँ आएँ। वो रास्ता है जो भगतसिंह ने अपनाया था। भगतसिंह चाहते थे कि इस धरती पर सभी मनुष्य एक समान हों। न तो कोई अमीर रहे और न ही कोई ग़रीब। सभी को बराबर-बराबर हक मिलें। लेकिन आज ऐसा कुछ भी नहीं है। हमें आजादी मिली है फिर भी हम गुलाम हैं। न ही अपनी मर्ज़ी से सो सकते हैं न ही अपनी मर्ज़ी से खा सकते हैं तो फिर आज़ादी कैसी?

मैं बिगुल का नियमित पाठक हूँ। आज मैंने बिगुल को जो चिट्ठी लिखी है ये चिट्ठी नहीं बल्कि मेरे दिल की आवाज है। मज़दूर साथियो, मेरा आप लोगों से कहना है कि आप लोग जहाँ भी काम करते हैं एकता बनाएँ और अपने हक़ के बारे में सोचें। एक नई क्रान्ति की राह पर चलें और हाथ से हाथ मिलाकर चलें। आप अकेले नहीं हैं। आप आगे बढ़ कर देखो हज़ारों नहीं करोड़ों लोग आपके साथ हैं।

–विरेन्द्र कुमार, लुधियाना

जुनून

तेज़ हवाएँ तूफान भी
यक़ीनन लाया करती हैं
ये मन्द समीर जो चल रही है
इसकी गति बनाये रखना।
मेहनत अंजाम लाती है
मेहनतकश की
पसीना नमकीन है
नमकीन बनाये रखना।
लहू अपना रंग
यक़ीनन दिखायेगा
रगों में जो गर्मी है
इस लाल रंग की
वो तस्वीर बदलेगी
दुनिया की
अपने इस लहू का
उबाल बनाये रखना।
साथियों सम्पर्क बनाये रखना
क्रान्ति की मशाल जलाये रखना।
शहीदों के वारिस
फिर इसी ज़मीन पर
मिल जायेंगे
विचारों का कारवाँ चलाये रखना
मंज़िल अपनी दूर सही
पर कदमों में पड़ी होगी
वो भी
जज्बा-ए-सरफ़रोशी का
जुनून बनाये रखना।

-अमित 'संजीदा'
अम्बाला

मज़दूर साथियों के लिए दो ज़रूरी पुस्तिकाएँ

शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी
हावर्ड फास्ट
मूल्य : 10.00

मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा
मूल्य : 10.00

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर (कम्युनिस्टों) और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006**
सम्पादकीय उपकार्यालय : **जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ**
दिल्ली सम्पर्क : **बी-108, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94 फ़ोन : 011-65976788**
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति रु. 3.00 वार्षिक रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वाद्यम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए ज़रूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन	5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त	3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की	3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ	10/-
समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	12/-
क्यों माओवाद?	10/-
मई दिवस का इतिहास	5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल	12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी	10/-
पार्टी कार्य के बारे में	15/-
जनता के बीच पार्टी का काम	30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17/- रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : **जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ**

मई दिवस और मज़दूर आन्दोलन

पूँजी के खिलाफ श्रम के लम्बे और दीर्घकालिक संघर्ष में मई दिवस का अहम स्थान है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अमरीका के मज़दूरों ने अपने अमानवीय जीवन, जो पूँजी ने उनको दिया, के खिलाफ संघर्ष का झण्डा उठाया। जब मज़दूरों से रोज़ाना किसी निर्धारित समय के बिना जानवरों की तरह काम लिया जाता था तो अमेरिकी मज़दूरों ने ''आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम, आठ घण्टे मनोरंजन'' का नारा बुलन्द किया। 1886 तक आते-आते अमेरिकी मज़दूरों का आठ घण्टे के कार्य-दिवस के लिए संघर्ष पूरे ज़ोर पर था। लेकिन पूँजीवादी सत्ता भी चुपचाप नहीं बैठी थी। पूँजीपति भी मज़दूरों के इस आंदोलन को कुचलने की साजिशें रच रहे थे। 1886 के मई महीने में अमेरिका के शहर शिकागो के हे-मार्केट में जुलूस निकाल रहे मज़दूरों को बर्बर पुलिस दमन का सामना करना पड़ा। कई मज़दूर शहीद हुए। बाद में झूठे केस बना कर इस मज़दूर संघर्ष के नेताओं अलबर्ट पार्सन्स, आगस्त स्पाइस, एडोल्फ फ़िशर, जार्ज ऐंजल आदि को फाँसी दी गई और अनेक मज़दूरों को जेल में डाल दिया गया। बाद में मज़दूरों के अन्तरराष्ट्रीय संगठन दूसरे इण्टरनेशनल ने पहली मई को अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के रूप में मनाने का ऐलान किया। 1890 की मई को अमरीका और कई देशों में पहली मई दिन मनाया गया। तब से आज तक मज़दूरों की अन्तरराष्ट्रीय एकजुटता के प्रतीक के रूप में मई दिन लगभग सारी दुनिया में मनाया जाता है।

इस बार फिर अनेक सम्भावनाओं और चुनौतियों भरे समय में दुनिया के मज़दूर अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस मनाने जा रहे हैं। आज पूँजी का विश्व के कोने-कोने तक फैलाव हो चुका है। साथ ही इसकी कब्र खेदने वाले मज़दूरों के समूह भी संसार के कोने-कोने में पैदा हो गए हैं। दूसरे विश्व युद्ध के बाद औपनिवेशिक शिकंजे से आज़ाद हुए तीसरी दुनिया के देशों में आज पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध प्रधान हैसियत अख़्तियार कर चुके हैं। सर्वहारा, अर्ध-सर्वहारा आबादी इन देशों की कुल आबादी के आधे से भी अधिक हो चकी है। ''दुनिया के मज़दूरो एक हो!'' का नारा आज पहले के समय से अधिक प्रासंगिक हो चुका है। विकसित पूँजीवादी/साम्राज्यवादी देशों में तो हुक्मरान ''कल्याणकारी राज्य'' की नीतियों के ज़रिए कुछ समय के लिए वर्ग अन्तरविरोधों को धूमिल करने में कामयाब हो गए हैं लेकिन तीसरी दुनिया के पूँजीवादी देशों की स्थिति इसके एकदम विपरीत है। इन देशों में पूँजीवादी विकास ने समाज को बुरी तरह ध्रुवीकृत कर दिया है। इनमें से अधिकतर देशों में पूँजीवादी विकास ने समाज की भारी बहुसंख्यक आबादी को सर्वहारा-अर्धसर्वहाराओं में रूपान्तरित कर दिया है। इस विकास की बदौलत मेहनतकशों के हिस्से तबाही-बदहाली ही आई है। इन समाजों में वर्ग अन्तरविरोध बेहद तीखे हैं। आज ये देश जनवादी, नव-जनवादी क्रान्ति की मंज़िल पार करके नई समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में दाखिल हो चुके हैं। इतिहास के प्रवाह ने सर्वहारा क्रान्तिकारियों को उस तमाम बोझ से मुक्त कर दिया है जो इतिहास ने ही कभी उनके कन्धों पर लाद दिया था। यानी आज इन देशों के मज़दूर वर्ग को इन सभी कार्यभारों से मुक्ति मिल गई है जो उसे नहीं बल्कि बुर्जुआ वर्ग को पूरे करने थे, जैसे कि जनवादी क्रान्ति आदि।

आज विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पहले किसी भी समय से अधिक जुड़ चुकी है। तकनोलॉजी, विशेषकर, सूचना तकनोलॉजी के अभूतपूर्व विकास ने दुनिया के विभिन्न देशों के बीच भौतिक दूरियों को कम करके दुनिया को बहुत छोटा कर दिया है। ऐसे समय में दुनिया के अलग-अलग देशों के मज़दूर आन्दोलन में आपसी समन्वय स्थापित कर पाना बहुत आसान हो गया है। आज के समय में किसी एक देश में अगर मज़दूर संघर्ष का लावा फूटता है तो उसके तेज़ रफ़्तार से दुनिया के अन्य देशों में फैलने की सम्भावनाएँ भी अधिक हैं।

जहाँ पूरे विश्व में हुए उत्पादक शक्तियों के विकास ने मज़दूर आन्दोलन के विकास के लिए बहुत सी सम्भावनाएँ पैदा की हैं, वहीं चुनौतियाँ भी कोई कम नहीं हैं। इतिहास के रंगमंच पर पूँजीवादी व्यवस्था के प्रकट होने के साथ पूँजीवादी शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ़ मज़दूर वर्ग के संघर्षों का जो सिलसिला शुरू हुआ वह अनेक उतार-चढ़ावों से होकर गुज़रा। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में मज़दूर वर्ग ने बार-बार पूँजी की सत्ता को चुनौती दी। बीसवीं सदी में विश्व के कई देशों में मज़दूर वर्ग की सत्ता स्थापित हुई और धर्म विहीन समाज के निर्माण की दिशा में मानवता का मार्च शुरू हुआ। लगभग एक तिहाई धरती पर लाल झण्डा लहराने लगा। लेकिन 1956 में सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद पूर्वी यूरोप के देशों में एक के बाद एक पूँजीवादी पुनर्स्थापना हो गयी। 1976 में माओ त्से-तुङ की मृत्यु के बाद चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ समाजवादी देशों में पूँजीवादी पुनर्स्थापना की प्रक्रिया मुकम्मिल हुई। मज़दूर वर्ग से विश्व सर्वहारा क्रान्ति के सभी आधार इलाके छिन गए। आज दुनिया के किसी भी देश में समाजवादी व्यवस्था नहीं रह गयी है।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लगे धक्के से विश्व मज़दूर वर्ग अभी तक उभर नहीं पाया है। मेहनतकश लोगों के बीच समाजवादी व्यवस्था की व्यावहारिकता पर ही सवाल उठ खड़े हुए हैं। समाजवाद में पूँजीवादी पुनर्स्थापना की प्रक्रिया को किस तरह समझा जाए इसके बारे में पूरी दुनिया के सर्वहारा क्रान्तिकारियों के बीच विचारधारात्मक विभ्रम पैदा हुआ है। दूसरी तरफ़ पूरे विश्व में बुर्जुआ वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग की विचारधारा पर लगातार हमले हो रहे हैं।

आज विश्व स्तर पर मज़दूर आन्दोलन का कोई अन्तरराष्ट्रीय मंच मौजूद नहीं है जो संकट के ऐसे समय में विश्व मज़दूर आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान कर सके और न ही कोई अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त नेतृत्व ही है। दुनिया भर का क्रान्तिकारी आन्दोलन टूट-बिखराव का शिकार है।

आज विश्व स्तर पर 19वीं शताब्दी या 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की तरह मज़दूर आन्दोलनों का कोई उफ़ान भी नज़र नहीं आता। पूरी दुनिया में ही एक सन्नाटे भरा माहौल हावी है, हाँ कहीं-कहीं कुछ छोटी-मोटी मुठभेड़ें ज़रूर नज़र आती हैं लेकिन कहीं भी मज़दूरों के ऐसे संघर्ष नज़र नहीं आ रहे जो पूँजीवादी व्यवस्था के लिए संकट पैदा कर सकने में सक्षम हों। जहाँ कहीं मज़दूरों के बड़े संघर्ष नज़र आते हैं जैसे कि पिछली शताब्दी के आख़िरी दशक में और इस शताब्दी के शुरुआती वर्षों में लातिन अमेरिका तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में, वहाँ सही नेतृत्व की कमी के चलते ये संघर्ष दम तोड़ जाते हैं। मज़दूरों का स्वयंस्फूर्त कोई भी संघर्ष भले ही कितना ही ताक़तवर क्यों न हो, सही क्रान्तिकारी नेतृत्व की गैर-हाज़िरी में वे संघर्ष कभी भी इस शोषक व्यवस्था के लिए अस्तित्व का ख़तरा नहीं बन सकते। इन हालात में बड़े से बड़े मज़दूर संघर्ष की नियति फिर से इसी व्यवस्था में मिल जाना ही होती है।

ऊपरी तौर पर देखने से आज के हालात बहुत निराशाजनक नजर आते हैं। ऐसे समय में कुछ कच्चे ''क्रान्तिकारियों'' की मज़दूर आन्दोलन के प्रति प्रतिबद्धता अगर डगमगा रही है तो इसमें कोई हैरान होने की बात नहीं है। ऐसे समय में यह सब कुछ होता ही है।

आज के इस निराशा भरे दौर का दूसरा पहलू यह भी है कि न तो मेहनतकशों की शोषण-उत्पीड़न से मुक्त जीवन की इच्छा ही मरी है और न ही दुनिया में वर्ग संघर्षों का सिलसिला ही थमा है। हाँ, आज की हालत का यह मुख्य पहलू नहीं है। अभी भी पूरी दुनिया में क्रान्ति की धारा पर प्रतिक्रान्ति की धारा हावी है।

आज विश्व स्तर पर वैश्वीकरण के नाम पर बुर्जुआ वर्ग ने मज़दूर वर्ग के खिलाफ एक युद्ध छेड़ा हुआ है। कुर्बानियों से भरे संघर्षों की बदौलत मज़दूरों ने इस पूँजीवादी व्यवस्था से जो अधिकार लिए थे, वे एक-एक करके छीने जा रहे हैं। विश्वस्वर पर बुर्जुआ वर्ग के इस हमले का मज़दूर वर्ग द्वारा प्रतिरोध भी जारी है, भले ही यह बहुत कमज़ोर है। पूरी दुनिया पर नज़र दौड़ाएँ तो पता चलता है कि अज भी दुनिया में वे सब कारण मौजूद हैं जिन्होंने 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में मज़दूर आन्दोलन के तूफ़ानों को जन्म दिया था। इन बात की कोई वजह नज़र नहीं आती कि आज फिर से मज़दूर आन्दोलन के तूफ़ान नहीं उठेंगे। बस कमी है तो ऐसे नेतृत्व की जो 20वीं सदी में मज़दूर आन्दोलन को लगे धक्कों से सही सबक हासिल करे। इसकी गैरहाज़िरी में मज़दूरों के स्वयंस्फूर्त संघर्ष उठते रहेंगे और दम तोड़ते रहेंगे।

सर्वहारा क्रान्तिकारियों के सामने आज सबसे पहला कार्यभार विचारधारात्मक सफ़ाई का है। 20वीं शताब्दी के समाजवादी प्रयोगों को लगे धक्कों से सही सबक हासिल करना है तथा बुर्जुआ वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग की विचारधारा के ऊपर किए जाने वाले हमलों का मुँह तोड़ जवाब देना है और मज़दूर वर्ग के हरावल दस्ते को नये सिरे से संगठित करना है। मज़दूर वर्ग के हरावलों को मज़दूर संघर्षों के इतिहास के सबकों को आत्मसात करना होगा। मज़दूर वर्ग ने पूँजी के दुर्गों पर बार-बार हमले किए हैं। पेरिस कम्यून (1871), रूस की समाजवादी क्रान्ति (1917), चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966)–पूँजी की सत्ता के खिलाफ़ मज़दूर वर्ग के संघर्ष के मील के पत्थर हैं, जिन्होंने न सिर्फ़ यह साबित किया कि मज़दूर वर्ग समानता पर आधारित नये समाज के निर्माण में सक्षम है बल्कि इन क्रान्तियों ने तमाम हारों के बावजूद मज़दूर वर्ग की मुक्ति के दर्शन को विकास के नए शिखरों तक पहुँचाया है।

बिना शक, विचारधारात्मक संघर्ष की यह प्रक्रिया मज़दूर वर्ग को जगाने, संगठित करने तथा लामबन्द करने की प्रक्रिया से अलग-थलग नहीं हो सकती। बुनियादी वर्गों, विशेषकर औद्योगिक मज़दूरों में गहरे पैठना होगा। मज़दूरों के बीच आम राजनीतिक तथा विचारधारात्मक प्रचार-प्रसार की कार्रवाई पूरे धैर्य, सृजनात्मकता तथा संजीदगी के साथ चलानी होगी। एक ओर जहाँ मज़दूरों की राजनीतिक-विचारधारात्मक शिक्षा पर ज़ोर देना होगा वहीं साथ ही साथ मज़दूरों के चल रहे संघर्षों में बढ़-चढ़ कर भागीदारी करनी होगी और जहाँ कहीं सम्भव हो अपनी पहल पर मज़दूरों के आर्थिक-राजनीतिक संघर्ष विकसित करने होंगे। जब मज़दूरों के संघर्षों के साथ गुँथ-बुनकर राजनीतिक- विचारधारात्मक प्रचार-प्रसार की कार्रवाई चलाई जाएगी तो इसकी मज़दूरों में अधिक ग्रहणशीलता होगी।

आज के हालात कितने ही निराशाजनक तथा कठिन नज़र आएँ लेकिन आशा की किरणें इसी प्रक्रिया में से ही फूटेंगी। मज़दूरों की दुनिया में छाई चुप्पी आभासी यथार्थ है। यह तूफ़ान आने से पहले की चुप्पी है। एक सच्चे वैज्ञानिक की दृष्टि व साहस के साथ इस हालात को समझना होगा तथा मज़दूर संघर्ष के आने वाले तूफ़ानों को सही दिशा दे सकने के लिए खुद को तैयार करना होगा।

–सुखविन्दर

हीरो साइकिल लि. (साहिबाबाद इकाई) के मज़दूरों पर भी भूमण्डलीकरण की मार

बिगुल संवाददाता

गाज़ियाबाद। 1990 से भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की जो नीतियाँ इस देश के हर सेक्टर पर सरकार ने जोर-शोर से लागू की हैं, उनका परिणाम सर्वत्र दिखने लगा है। पूँजीवाद की आँधी ने मज़दूरों को हर जगह उखाड-पछाड़ कर रख दिया है। हीरो साइकिल कम्पनी, लुधियाना की साहिबाबाद स्थित दूसरी इकाई भी इसकी चपेट में आ चुकी है।

2003 तक इस इकाई में 850 परमानेण्ट और 1000 कैजुअल तथा ठेकेदारी पर काम करने वाले मज़दूर थे। इसी साल से कम्पनी ने यहाँ भी मज़दूरों के रोजगार पर अपना हाथ साफ करना शुरू किया। काट-छाँट करने पर 596 परमानेंट तथा कुछ ठेकेदारी वाले बचे रह गये। चूँकि कम्पनी को अपना मुनाफ़ा निकालना था इसलिए भोंडे तथा ज़ोर-जबरदस्ती से यह व्यापक काट-छाँट की गयी थी।

कम्पनी का प्रतिदिन का प्रोडक्शन 1840 साइकिल था। इसमें दो तरह का प्रोडक्शन होता था। 85 प्रतिशत प्रोडक्शन स्टैंडर्ड साइकिलों का होता था, जिनकी बाज़ार में कीमत 1400 रुपये के आसपास थी तथा शेष 15 प्रतिशत प्रोडक्शन वैराइटी साइकिलों का होता था, जिनकी बाज़ार में कीमत 2400 रुपये से 3500 रुपये तक थी। 2003 में एक बार तालाबन्दी भी हुई थी लेकिन उस समय काम फिर से चालू हो गया था।

कम्पनी एम.डी. आशीष मुंजाल (साहिबाबाद इकाई) अलग से भी अपना धन्धा-पानी चमकता था। उसने सनराइज नाम से एक हुण्डई कार का शोरूम ले लिया था। हीरो साइकिल कम्पनी के छोटे-छोटे जॉब वर्क वह मंजु, नेशनल तथा दुर्गा आदि कम्पनियों से करवाने लगा था। यानी वह कम्पनी के लिए खरीदे गये कच्चे माल को जॉब वर्क के लिए छोटी-छोटी कम्पनियों में भेज देता था और बाद में उन्ही तैयार माल को हीरो साइकिल को ऊँचे दामों पर खरीदा हुआ दिखाता था। इस प्रकार मज़दूरों की खून-पसीने की मेहनत से वह उन्नति कर रहा था। परन्तु उसकी अन्धी हवस लगातार बढ़ती जा रही थी जिसका परिणाम 2007 में प्रकट हो गया।

1990 में भर्ती हुए यहाँ के परमानेण्ट कर्मचारियों ने, हीरो साइकिल ग्रुप कामगार यूनियन नाम से अपनी एक यूनियन बनाई थी। जनवरी 2007 में कम्पनी और इस यूनियन के बीच तीन साल का अनुबन्ध हुआ था, इसमें 800 रु. का इंक्रीमेण्ट शामिल था। मई में 20 प्रतिशत बोनस भी दिया गया तथा ओवरटाइम भी तय हुआ था।

मई के बाद कम्पनी ने यूनियन से ठेकेदारी लागू करने की बात की। कम्पनी का स्टैण्ड था कि घाटा हो रहा है। मज़दूरों ने बैलेंस शीट की माँग की, जिसको कम्पनी ने दिखाने से मना कर दिया। कम्पनी और मज़दूरों के बीच खींचतान शुरू हो चुकी थी। 3 सितम्बर 2007 को डी.एल.सी. ने कम्पनी का दौरा किया। कम्पनी ने कच्चा माल देना बन्द कर दिया था लेकिन मज़दूर काम न होने पर भी यथास्थान उपस्थित थे। अपर श्रमायुक्त डी.पी. सिंह ने भी यही पाया की कच्चा माल नहीं था। उसके एक दिन बाद 5 सितम्बर 2007 को तालाबन्दी कर दी गई।

मज़दूर लामबन्द होकर डी.एम. गाजियाबाद तक गये। 30 अक्टूबर 2007 को श्रम सचिव, उत्तर प्रदेश कपिल देव ने तालाबन्दी की अनुमति दे दी। इसके खिलाफ हाईकोर्ट में अर्ज़ी दी गई। इलाहाबाद कोर्ट ने तालाबन्दी को निरस्त करार दिया। 10 जनवरी 2008 को श्रम सचिवालय में मज़दूरों के प्रतिनिधियों तथा कम्पनी के नुमाइन्दों के बीच श्रम सचिव के समक्ष बातचीत हुई। लेकिन बातचीत का कुल मिलाकर नतीज़ा वही ढाक के तीन पात रहा। श्रम सचिव के आश्वासन कोरे साबित हुए। मज़दूर अब तक तालाबन्दी की मार झेल रहे हैं। वे रिकवरी की माँग कर रहे हैं लेकिन कम्पनी मामले को दबा रही है और प्रशासन पूरी तरह से कम्पनी के साथ है।

कुछ तथ्य और भी हैं जो ग़ौर करने लायक हैं। 2007 में मज़दूरों का प्रतिदिन प्रोडक्शन 1840 साइकिल था जिसमें 20 प्रतिशत वैराइटी साइकिल जिनकी बाजार में कीमत 3500 रुपये तक थी और 80 प्रतिशत स्टैंडर्ड साइकिल जिनकी बाज़ार में कीमत 1500 से 1700 रुपये तक थी। 2003 से 2007 तक वैराइटी साइकिलों का प्रोडक्शन 5 प्रतिशत बढ़ा था। मुनाफ़ा तो बढ़ा लेकिन मुनाफे की अन्धी हवस कम नहीं हुई थी।

मज़दूरों के इस संघर्ष में सीटू ने भागीदारी की। अब तक उसने वही किया है जो वह अक्सर हर कम्पनी में करती आई है। मज़दूरों को लेकर हड़ताल-धरना-प्रदर्शन करना आदि-आदि। लेकिन उन्हें उनके सही लक्ष्य को बताने का काम वह पहले ही त्याग चुकी है। सर्वहारा और मज़दूरों का ऐतिहासिक लक्ष्य, जो कि दूरगामी है यानी सारी सत्ता, प्रशासन का राज-काज मज़दूरों को अपने हाथों में लेने का, सीटू तो क्या एटक, इंटक आदि कोई भी यूनियन उन्हें न तो बताती है और न ही उन्हें इस दूरगामी लक्ष्य के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित करती है। उनका मकसद सिर्फ अपनी ट्रेड यूनियन का धन्धा-पानी चलाना तथा मज़दूरों को आर्थिक माँगों के लिए लड़ने तक ही सीमित रखना है, जो कि सर्वहारा वर्ग से विश्वासघात है।

सबक़....

(पेज 2 से आगे)

मज़दूर गाँव चले गए। कुछ ने हिसाब ले लिया। लगभग सारे 4000 मज़दूरों को निकालकर नए मज़दूरों को भर्ती कर लिया गया। आज भी फैक्ट्री ठीक उसी प्रकार चल रही है। लेकिन हार हुई मज़दूरों की।

जिन मज़दूर अगुवाओं पर केस दर्ज हुआ उनमें से दो का नाम है मुन्ना कुमार और सुरेश सिंह जो बिना मदद के हर वक्त टक्कर देते रहे। चार साल तक कोर्ट कचहरी चक्कर काटते रहे। लुधियाना के सेशन जज आर. एल. आहूजा ने सारे गवाहों के बयानों के आधार पर 307, 332, 118, 119 में बाइज्जत बरी और 353, 386, 188, 144, 186 में तीन साल की कैद और 7000 रुपये जुर्माना सुनाया और जेल भेज दिया। जिस दिन फैसला आया उसी दिन मैंने 'बिगुल' का अंक देखा कि सुप्रीम कोर्ट ने निचली अदालतों को निर्देश दिया है कि मज़दूरों के साथ सख्ती से निपटे। ठीक उसी प्रकार हमारे सामने आया। हमने चण्डीगढ़ हाईकोर्ट से बेल लिया और फिर बाहर हूँ। लेकिन पूरे संघर्ष के दौरान हमें ये अनुभव हुआ कि इस देश में कोई कानून नहीं है। सब पूँजीपतियों की जागीर है। वो जैसा चाहते हैं वैसा होता है । लेकिन हमें ये आशा है कि ये संघर्ष जारी रहेंगे क्योंकि हमें इतिहास से प्रेरणा मिली है कि एसे संघर्षों में हार-जीत हुई ही है फिर भी हमें संघर्ष के रास्ते को छोड़ना नहीं चाहिए।

-मुन्ना कुमार, लुधियाना

यह मन्दी कैसी?

बिगुल संवाददाता

पन्द्रह घण्टे रोज़ाना बिना छुट्टी के काम करने के बाद अगर कोई वर्कर बोले कि मन्दी चल रही है तो हैरानी ज़रूर होती है। कारण कि आम तौर पर तो दिहाड़ी आठ घण्टे की ही होती है। दो आदमियों का काम एक वर्कर से लेने पर भी मन्दी क्यों है और किसकी है?

बिगुल का प्रचार करने के लिए बिगुल की टीम टेक्सटाइल मज़दूरों में गई तो बातचीत के दौरान अक्सर ही वर्कर बोलते थे कि मन्दी का समय चल रहा है। पता करने पर यह बात सामने आई कि सारा काम पीस रेट पर होता है। पक्की भरती नहीं है। 500 से ऊपर तक की फैक्ट्रियों में भी पक्की भरती नहीं ली जाती है। अगर की भी है तो बस अपवाद, बस एक-दो जगह पर।

यह भी पता चला कि 1992 की टेक्सटाइल मज़दूरों की हड़ताल के बाद मालिकों ने नुकसान और मन्दी का बहाना बनाकर दो रुपये पीस रेट कम कर दिया। और बाद में भी पीस रेट कम होता रहा लेकिन महंगाई बढ़ती रही। इसके कारण वर्कर ज़्यादा शरीर तोड़ते रहे। मन्दी का भरम आज भी बनाया हुआ है। पर असल में मन्दी मालिकों की नहीं। यह मन्दी सिर्फ वर्करों की ही है। मालिक तो डबल शिफ्ट काम चलवा रहे हैं। फिर भी वर्कर को कहा जाता है कि मन्दी है। महंगाई बढ़ने से जो वर्कर एक जैकाट मशीन चलाते थे वे दो-दो मशीनें चला रहे हैं। ऐसे ही मालिक दो की जगह तीन प्लेन पावरलूम मशीन चलाने के लिए दबाव बना रहें है। जो नहीं कर पाता उसे बाहर कर दिया जाता है। पाँच साल पहले मेहनत करके वर्कर जितने पैसे कमाते थे आज तब से डेढ़ गुनी मेहनत करके कमा रहे हैं। अगर वर्कर ज़्यादा मेहनत करके ज़्यादा वेतन बना भी लेता है तो मालिक पीस रेट कम कर देते हैं। उनका काम वो चल ही रहा है।

अगर मालिक ज़्यादा काम करने के लिए वर्कर को मजबूर करते हैं तो यह कैसी मन्दी है जो उन्हें मज़दूरों की हड्डियों को निचोड़ने के लिए प्रेरणा देती है। लेकिन साथियो यह उन नर-पिशाचों की मुनाफ़े के हवस ही है जो अपने अनेक रूपों में मज़दूरों को निगलती जा रही है। मन्दी तो असल में सिर्फ़ बहाना ही है।

15 घण्टे काम करो नहीं तो बाहर जाओ!

बिगुल संवाददाता

लुधियाना। लुधियाना के ताजपुर रोड पर गीता नगर नाम से एक मुहल्ला बसा हुआ है। यह मुहल्ला शाल की बुनाई (पावरलूम) और डाइंग के काम के लिए जाना जाता है। इस इलाके में मालिकों ने अपना गुण्डाराज कायम कर रखा है। गीता नगर की गली नम्बर 2 में आशित टेक्सटाइल (साची) फैक्ट्री मज़दूरों की बर्बर लूट और दमन के नए कीर्तिमान बना रही है।

इस फैक्ट्री में 150 से ज़्यादा मज़दूर काम करते हैं। फैक्ट्री में हैंडलूम, पावरलूम, शौलजर मशीनें लगी हुई है। सुबह के 6 बजे से लेकर रात 9 बजे तक काम लिया जाता है। जो मज़दूर इतने घण्टे काम नहीं कर पाता उसे बाहर कर दिया जाता है। दूसरी बात ज़्यादा घण्टे काम करना खुद की मजबूरी बन जाती है। कारण यह कि जिस पीस रेट पर मज़दूरों को काम पर रखा जाता है वह इतना कम होता है कि आठ घण्टे काम करने पर 70-75 रुपए भी मुश्किल से ही बनते हैं। 15 घण्टे काम के बदले भी यहाँ मज़दूर 4000-4500 तक ही कम पाता है। बिजली कटने और मशीन खराब होने पर होने वाला नुकसान भी मज़दूर को ही उठाना पड़ता है। किसी वजह से दिहाड़ी टूटती है तो कमाई और भी कम हो जाती है। इस मजबूरी के चलते कई मज़दूर तो दो-दो मशीनें भी चलाते हैं, ज्यादा शरीर तोड़ते हैं। एडवांस के नाम पर भी पैसा समय से नहीं मिलता। 25 तारीख के बदले में 30 तक खींचा जाता है। तनख्वाह 10 के बजाय 15 तक दी जाती है। अगर किसी कारण दो दिन तक छुट्टी कर ली जाए तो काम से बाहर कर दिया जाता है और बाकी की हिसाब भी नहीं दिया जाता।

कोई लेबर कानून नहीं लागू है इस फैक्ट्री में । न कोई प्रमाण पत्र है कि कोई दुर्घटना होने पर मज़दूर की कोई सुनवाई हो सके, दवा इलाज हो सके। फण्ड, बोनस, न्यूनतम वेतन, ओवरटाइम की डबल मज़दूरी नाम की तो कोई चीज़ है ही नहीं। सारा काम पीस रेट पर लिया जाता है। पीस रेट भी बढ़ती महंगाई में बढ़ाने की बजाए और कम कर दिया गया है।

रोम के गुलामों की तरह आज यहाँ मज़दूरों को अपना शरीर मालिक की तिज़ोरी को बड़ा करने के लिए खटाना पड़ रहा है जब कि वह अपने बच्चे को भी पढ़ा नहीं पा रहे हैं। यह मात्र एक ही फैक्ट्री की कहानी नहीं है। लगभग सारी टेक्सटाइल फैक्ट्रियों में यही हालत बनी हुई है।

पश्चिम बंगाल में सरकारी शह पर 'सीटू' पूँजीपतियों की गुण्डावाहिनी बन चुकी है!

कार्यालय संवाददाता

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन 'सीटू' (सेण्टर ऑफ इण्डस्ट्रियल ट्रेड यूनियन्स) की असलियत के बारे में आम मज़दूरों के बीच अब शायद ही कोई भ्रम रह गया हो। विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों के संघर्षों के साथ गद्दारी और मालिकों की दलाली इसकी पहचान बन चुकी है। लेकिन उसका असली पूँजीपरस्त चेहरा वहाँ पूरी नंगई के साथ उजागर होता है जहाँ माकपा की सरकारें है–पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा में। इन राज्यों में 'सीटू' पूँजीपतियों की गुण्डावाहिनी ही नहीं भाड़े के हत्यारों का गिरोह बन चुकी है।

पिछले मार्च 08 महीने में 'सीटू' की गुण्डावाहिनी ने कोलकाता विद्युत वितरण निगम (सी. ई. एस. सी.)के ठेका मज़दूरों के एक लोकप्रिय नेता रामप्रवेश सिंह की दिन-दहाड़े पीट-पीट कर हत्या कर दी। साथी रामप्रवेश सिंह ठेका मज़दूरों की स्वतंत्र यूनियन सी.ई. एस. सी. मेन्स डिपार्टमेण्ट कांट्रेक्ट मज़दूर संघ के उपाध्यक्ष थे। 'सीटू' गुण्डावाहिनी के इस हमले में 15 अन्य मज़दूर साथी भी गम्भीर रूप से घायल हो गये।

साथी रामप्रवेश और अन्य मज़दूर साथियों को गुनाह यह था कि उन्होंने 'सीटू' के दलाल नेतृत्व को नकार दिया था और अपनी स्वतंत्र यूनियन के बैनर तले अपनी माँगों के समर्थन में 10 व 11 मार्च को दो दिवसीय हड़ताल का आह्वान किया था। इसी हड़ताल के समर्थन में मज़दूर साथी अपना माँग-पत्र लेकर कोलकाता के उन इलाक़ों में प्रचार कर रहे थे जहाँ उनकी वर्कशाप है। लगभग बीस मज़दूरों की एक टीम जब एक इकाई से दूसरी इकाई की ओर जा रही थी तभी अचानक पाँच मेटाडोर ट्रकों में सवार 'सीटू' के गुण्डे वहाँ पहुँचे और उन्होंने इन मज़दूरों की निर्मतापूर्वक पिटाई शुरू कर दी। इस हमले के दौरान रामप्रवेश हमलावरों की गिरफ़्त में आ गये और उनकी रीढ़ की हड्डी टूट गयी। सरकारी अस्पताल में पहुँचाये जाने के दो घण्टों के भीतर ही उनकी मृत्यु हो गयी।

साथी रामप्रवेश सिंह और कुछ अन्य वर्गसचेत मज़दूरों के नेतृत्व में 'सीटू' से अलग अपनी स्वतंत्र यूनियन बनाने की कहानी देश के औद्योगिक क्षेत्रों में पिछले दो दशकों में उभरी एक नयी रुझान की सच्चाई उजागर करती है। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की लगातार खुल्लमखुल्ला होती जा रही पूँजीपरस्ती और मज़दूर संघर्षों में गद्दारियों से हताश-निराश मज़दूरों के अन्दर नई राह खोजने की एक बेचैनी पैदा हुई है। सी. एस. ई. सी. के ठेका मज़दूरों द्वारा नयी स्वतंत्र यूनियन बनाने की कहानी इसी बेचैनी का एक उदाहरण है।

पिछले बीस-पच्चीस वर्षों के दौरान सी. एस. ई. सी. के ठेका मज़दूरों ने अपने अनुभव से केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के असली चरित्र को पहचाना। पहले वे कारखाने में मौजूद चार अलग-अलग युनियनों –'सीटू', इंटक, एटक और एच. एम. एस. से जुड़े लेकिन उन्होंने देखा कि इन यूनियनों के नेता उनके हकों के लिए ईमानदारी से संघर्ष करने के बजाय मालिक की दलाली कर अपनी मुट्ठी गर्म करने की ही फ़िराक में रहते हैं। हाई वोल्टेज बिजली के तारों पर काम करते हुए कई बार ऐसे हादसे हुए जिनमें मज़दूर साथियों की जान तक चली गयी लेकिन यूनियनें मुआवज़ा तक नहीं दिला सकीं। कई बार तो ऐसा हुआ कि मृत मज़दूर की लाश तक ग़ायब कर दी गयी।

मार्च 2006 में इसी तरह 6000 वोल्ट की लाइन पर काम करते हुए लाइन मज़दूर चन्द्रशेखर दास की मौत हो गयी थी। इस हादसे के विरोध में मज़दूरों ने स्वत:स्फूर्त ढंग से हड़ताल शुरू कर दी। उस समय उन्होंने सामूहिक रूप से संकल्प लिया कि वे दलाल यूनियनों को छोड़कर अपनी खुद की यूनियन बनायेंगे। अपनी तैयारी पूरी करने के बाद उन्होंने अपनी स्वतंत्र यूनियन सी. ई. एस. सी. मेन्स डिपार्टमेण्ट कांट्रेक्ट मज़दूर संघ को दिसम्बर 2006 में पंजीकृत करा लिया। ठेका मज़दूरों की इस पहलकदमी से उनके कर्ता-धर्ता के साथ ही प्रबन्ध तंत्र भी बौखला उठा।

इस नयी यूनियन के गठित होने के बाद पिछले दो वर्षों के भीतर मालिकान और पुरानी यूनियन के नेताओं ने ठेका मज़दूरों की एकता को तोड़ने के लिए कोई भी हथकण्डा बाकी नहीं छोड़ा। मज़दूरों को झाँसा देने के लिए अप्रैल 2007 में चारों यूनियनों ने मालिकान के साथ एक द्विपक्षीय समझौता किया जिसके तहत 400-500 रुपये वेतन वृद्धि की घोषणा की गयी लेकिन ठेका मज़दूरों की मुख्य माँग का कोई समाधान नहीं किया गया। वर्षों से उनकी मुख्य माँग यह रही है कि ठेका मज़दूर के बजाय उन्हें बिजली मज़दूर का दर्जा दिया जाए ताकि उन्हें न्यूनतम निर्धारित सुरक्षा, मुआवज़ा मिल सके। इस कारण अधिकांश मज़दूरों ने इस वेतन वृद्धि को नामंजूर कर दिया और स्वतंत्र रूप से अपनी लड़ाई आगे बढ़ाने का निर्णय लिया।

अक्टूबर 2007 में रविन्द्र सदन के सामने बिजली के पोल पर काम करते अपनी नयी यूनियन के नेतृत्व में उसके परिवार को मुआवजा दिलाने में ठेका मज़दूरों ने कामयाबी हासिल की। पुराने चलन के अनुसार पहले तो मालिकान ने पी. जी. अस्पताल से उसका शव गायब कराना चाहा लेकिन मज़दूरों की सजगता और एकजुटता के चलते उनकी दाल नहीं गली और आखिरकार मैनेजमेण्ट को मुआवजा देने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस कामयाबी से उत्साहित होकर ठेका मज़दूरों ने अपनी माँगों को लेकर 10-11 मार्च को दो दिवसीय हड़ताल पर जाने का फैसला किया। अधिकांश मज़दूर हड़ताल में जाने के लिए तैयार हो गये। इसी से बौखलाकर सीटू ने सी. ई. एस. सी. मालिकान के भाड़े के हत्यारों के रूप में काम करते हुए मज़दूरों की प्रचार टोली पर हमला कर दिया जिसमें साथी रामप्रवेश सिंह की मृत्यु हो गयी।

सीटू का यह खूनी कारनामा कोई नया नहीं है। कोलकाता की औद्योगिक इकाइयों में हर क़ीमत पर ''औद्योगिक

(पेज 6 पर जारी)

भारत में मेहनतकशों की बदहाली पर चुप्पी अमेरिका में शोषण पर हाय-तौबा

दुनियाभर में विकास की जगमग तस्वीर पेश करने वाले अमेरिका में भी मेहनतकशों की स्थिति बदतर है। यूँ तो आम जनता को इसकी असलियत पता नहीं चल पाती है और अमेरिका के बारे में भ्रम का कोहरा छाया रहता है। लेकिन पिछले दिनों अमेरिका के पासकागुला, मिसिसिपी के एक शिपयार्ड में जानवरों जैसे व्यवहार से भारतीय मज़दूरों के आक्रोश का लावा फूट पड़ा और अमेरिका की सड़कों पर बह निकला। अपने देश में मज़दूरों के शोषण और बर्बादी पर चुप्पी साध जाने वाली मीडिया में इस बारे में खबरें आने के बाद, भारत में पूँजीपतियों को मेहनतकश अवाम का खून चूसने की आज़ादी देने वाली भारतीय सरकार ने भी घड़ियाली आँसू बहाए और इस मामले में हस्तक्षेप किया।

अमेरिका के पासकोगुला, मिसिसिपी में जहाज का निर्माण करने वाली कम्पनी सिगनल इण्टरनेशनल ने अमेरिका में 2005 में आए कैटरीना तूफान के बाद मज़दूरों की कमी के चलते भारत से 500 मज़दूरों को नौकरी पर रखा था। इसके लिए बाम्बे स्थित दीवान कन्सलटेंट्स और एस. मंसूर नामक कम्पनियों को ठेका दिया था। जिस तरह दासों के युग में दास मालिकों और दासों के व्यापारियों के एजेण्ट दुनिया भर से दास खरीद कर अपने आकाओं तक पहुँचाते थे। इसी तरह अमेरिकी आकाओं के लिए ये कम्पनियाँ मज़दूरों की भर्ती करती थीं। फ़र्क महज इतना था कि पहले यह काम डण्डे के जोर पर किया जाता था लेकिन पूँजीवाद में इसके लिए आर्थिक हथकण्डे अपनाए गए। इन कम्पनियों ने ग्रीन कार्ड और स्थायी निवास आदि का सपना दिखाकर कम्पनी के लिए वेल्डर और फिटरों की भर्ती की, लेकिन कम्पनी में नौकरी के लिए इन लोगों से मोटी रकम की माँग की गई। इसके लिए कइयों ने अपने घर, पत्नी के गहने आदि बेच कर और क़र्ज़ लेकर यह रक़म चुकायी। लेकिन वहाँ पहुँचते ही उन्हें असलियत का पता चल गया। उन्हें जिस कमरे में रहने की जगह दी गई उसमें 24 बिस्तर लगे थे, कपड़े बदलने आदि के लिए अलग जगह नहीं थी, सोने के लिए एक के ऊपर एक बिस्तर लगाए गए थे, जिस पर वे ठीक से बैठ भी नहीं सकते थे। एक मज़दूर ने बताया कि खाने के लिए उन्हें बासी या सड़ चुका खाना दिया जाता था। जहाँ वे रहते थे उसके चारों ओर लोहे की तारें लगाई गयी थीं, ताकि कोई आ-जा न सके, और कमरे के बाहर हमेशा बन्दूकधारी सुरक्षागार्ड तैनात रहते थे। ऐसा लगता था कि उन्हें कैद कर लिया गया है। वहाँ फोन की सुविध ा भी नहीं थी, न वो किसी से सम्पर्क कर सकते थे न कोई और उनसे सम्पर्क कर सकता था। जब इन बदतर स्थितियों के लिए वे मालिकान से बात करते तो उन्हें नौकरी से निकालने की धमकी दी जाती, डराया जाता और उनके वीजा, पासपोर्ट आदि कागजात फाड़ने की धमकी दी जाती। एक मज़दूर ने जब साथी मज़दूरों को इन स्थितियों के खिलाफ तैयार करने का प्रयास किया तो उसे इतना सताया गया कि उसने परेशान होकर आत्महत्या का प्रयास तक किया। बाद में उसे नौकरी से निकाल दिया गया। आखिर, जब मज़दूरों के सब्र का बाँध टूट गया तो इस साल मार्च में वे सौ मज़दूर सड़कों पर उतर आए। हाथ में नारे लिखी तख्तियाँ और 'हम होंगे कामयाब' जैसे गीत गाते हुए उन्होंने मार्च किया। जिसको एक स्थानीय टीवी चैनल ने प्रसारित किया जिसके बाद रातोंरात यह खबर दुनियाभर में फैल गयी।

मामला उछलने के बाद भारत सरकार ने मज़दूरों की दुर्दशा पर घड़ियाली आँसू बहाए और अमेरिका में भारत के राजदूत से जाँच अधिकारियों का एक दल मिसिसिपी के शिपयार्ड में भेजने और मामले की जाँच के लिए कहा। भारत में मज़दूरों को झाँसा देकर भर्ती करने वाली मुंबई स्थित कम्पनियों के लाइसेंस निरस्त कर दिए गए। मंत्रियों ने पूरे मामले पर चिन्ता जताई और हर सम्भव कदम उठाने के दावे किए। जबकि यही भारत सरकार अपने देश में मज़दूरों की बदहाल स्थिति, उनके शोषण पर चुप्पी साध लेती है। और मीडिया भी उनकी सुध नहीं लेती। जबकि यहाँ भी नोएडा, गुड़गाँव, लुधियाना, ठाणे, छत्तीसगढ़ आदि औद्योगिक जगहों पर मज़दूरों का खून चूस-चूस कर पूँजीपति अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे हैं, मज़दूरों की छँटनी हो रही है, तालाबन्दी हो रही है, कारखानों में उनसे बेहद अमानवीय व्यवहार किया जाता है, उनके बच्चे दवा-दारू के अभाव में मर रहे हैं।

बहरहाल, इस घटना ने इतना तो संकेत दे ही दिया है कि पूँजीवाद का संकट ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों मज़दूरों का शोषण भी बढ़ रहा है और इसके विरोध में मेहनतकश जनता भी विद्रोह कर रही है। इससे दुनिया का कोई कोना अछूता नहीं है। पूँजीवादी जनतंत्र का स्वर्ग भी नहीं।

–सन्दीप

''आधुनिक समाज में सर्वहारा वर्ग का, जिसे पूँजी आर्थिक दृष्टि से अपना दास बनाकर रखती है, राजनीतिक दृष्टि से तब तक प्रभुत्व नहीं हो सकता, जब तक वह उन ज़ंजीरों को नहीं तोड़ देता, जो उसे पूँजी के साथ बाँधकर रखती है।''

–लेनिन

महंगाई से ग़रीब बदहाल पूँजीपति मालामाल...

(पेज 1 से आगे)

इस ''तरक्की'' को देख कर लहालोट होंगे लेकिन देश की अर्थव्यवस्था में आई इस अभूतपूर्व ''तेज़ी'' और ''मज़बूती'' ने ग़रीब लोगों को जिस भयंकर महंगाई का तोहफ़ा दिया है उससे यह बात लोगों के सामने पूरी तरह साफ़ हो गई है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की तथाकथित तेज़ी और मजबूती के साथ मेहनतकशों की ज़िन्दगी का उल्टा सम्बन्ध होता है। एक तरफ तो इस आसमान को छूती अर्थव्यस्था ने देश के 80 करोड़ से भी अधिक लोगों को रोजाना के गुज़ारे के लिए महज 20 रुपए ही दिए हैं वहीं रोज़ाना के जीवन में इस्तेमाल होने वाली चीजों को कीमतें भी आसमान छू रही हैं।

लेकिन महंगाई से केवल तबाही ही नहीं आती। यह कुछ लोगों के लिए वरदान भी साबित होती है। बड़े-बड़े पूँजीपति, फार्मर, व्यापारी, कम्पनियाँ–जो ऐसी स्थिति का हमेशा ही इंतजार करते रहते हैं। वे अपने गोदामों, स्टोरों में जमा किये गये अनाज व अन्य सामान की बिक्री बढ़ी हुई कीमतों पर कर रहे हैं और मालामाल हो रहे हैं। सरकार व प्रशासन इन्हें पकड़ने के एकाध केस के जरिये कालाबाज़ारी रोकने का ढोंग रच सकते हैं लेकिन हर कोई जानता है कि राजनीतिक लीडरों, पुलिस अधिकारियों तथा अन्य सरकारी अफ़सरों की मिलीभगत से यह सब कुछ जोर-शोर से जारी रहता है। ये मुनाफ़ाखोर लुटेरे भयानक से भयानक विपदा में भी लोगों को लूटने की गलाकाटू होड़ से बाज नहीं आते।

यह महंगाई आसमान से नहीं टपकी है। यह शासक वर्गों द्वारा खुद पैदा की गई है। केन्द्र सरकार महंगाई को काबू में रखने की कोशिशों का पुरज़ोर दिखावा कर रही है। न तो मनमोहन जी और न ही पी. चिदम्बरम जी की विदेशी पढ़ाई काम आ रही है, न ही कांग्रेस पार्टी का आधी सदी से भी ज़्यादा का राज करने का अनुभव। लाल पूँछ हिलाते नकली वामपंथी भी बस भौंकने का फ़र्ज़ अदा कर रहें हैं। सबको पता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में महंगाई एक ऐसा बैल है जिसे काबू में रख पाना उनके बस में नहीं। आखिरकार कांग्रेस पार्टी का यह दस्तूरी बयान भी आ ही गया कि महंगाई तो पूरे विश्व में फैली है, अमेरिका की अर्थव्यवस्था जो डगमगा रही है। भ्रष्टाचार के बारे में भी कांग्रेस का बयान था कि जब पूरे विश्व में ही भ्रष्टाचार फैला हो तो भारत में कैसे रोका जा सकता है। पूँजीवादी विश्व के भीतर एक देश में राज कर रही एक पूँजीवादी पार्टी के मुँह से यह शब्द निकलना कोई हैरानी पैदा नहीं करता। इस पर तो बस इतना ही कहा जा सकता है कि जब कुछ भी सुधार कर पाना आपके बस में नहीं है तो चुनाव के समय हाथ लहरा-लहरा कर झूठे वायदे क्यों करते हैं? असलियत तो यह है कि कांग्रेस समेत अन्य सभी पार्टियाँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में आज तक भारत में राज किया है उनका लोगों के पक्ष में कुछ भी करने का कभी उद्देश्य रहा ही नहीं। इन सभी ने आज तक पूँजीपति वर्ग की ही सेवा की है।

ग़रीब लोगों के लिए तो हमेशा ही महंगाई कायम रहती है। फ़र्क तो सिर्फ़ यह होता है कि कभी इसकी मार कम हो जाती है और कभी असहनीय। ऐसा भी होता है कि रोज़ाना गुज़ारे की वस्तुओं की बढ़ती कीमतें 12-14 घण्टे की सख़्त मेहनत की कमाई को हथेली पर पहुँचने से पहले ही हवा कर देती हैं। मौजूदा पूँजीवादी ढाँचा जो ग़रीब मज़दूरों और मेहनतकशों को साधारण सी ज़रूरत की किसी चीज़ को खरीदने के बारे में हज़ार बार सोचने पर मज़बूर करता है, उसे कायम नहीं रहने देना चाहिए। जिन पूँजीवादी पार्टियों ने इस व्यवस्था की एक-एक ईंट की हिफ़ाज़त में दिन-रात एक किये रहती हैं, उनके भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने का कोई तुक नहीं। अगर हम चाहते हैं कि महंगाई को रोकने के लिए सरकार कोई छोटा-मोटा भी कदम उठाए तो उसके लिए भी मज़दूरों और अन्य मेहनतकशों को मज़बूत एकजुटता बनाकर सरकार के खिलाफ़ मोर्चाबन्दी करनी होगी।

महंगाई का राजनीतिक अर्थशास्त्र

पूँजीपति सामान्यतया मुद्रा के रूप में मज़दूरी देता है। जब मज़दूर अपनी श्रमशक्ति बेचता है तो वह कुछ धनराशि मुद्रा के रूप में प्राप्त करता है। मुद्रा के रूप में मज़दूरी को सांकेतिक मज़दूरी कहा जाता है। मुद्रा की मात्रा मज़दूर के वास्तविक जीवन स्तर को नहीं प्रदर्शित करती। वास्तविक जीवन स्तर केवल मुद्रा मज़दूरी द्वारा ख़रीदे जा सकने वाले आजीविका के साधनों द्वारा ही प्रदर्शित हो सकता है। यह मज़दूरी जो मज़दूर का वास्तविक जीवन स्तर प्रदर्शित करती है, वास्तविक मज़दूरी कही जाती है।

सांकेतिक मज़दूरी और वास्तविक मज़दूरी हमेशा एक ही नहीं होती। सांकेतिक मज़दूरी के स्थिर रहते हुए भी वास्तविक मज़दूरी घट सकती है। जब मुद्रा की क्रय शक्ति गिरती है और आजीविका के साधनों की कीमतें ऊपर चढ़ जाती हैं तो सांकेतिक मज़दूरी की उसी मात्रा के बदले आजीविका के कम साधन प्राप्त किये जा सकते हैं। ऐसे में वास्तविक मज़दूरी में कमी आ जाती है। कभी-कभी जब सांकेतिक मज़दूरी थोड़ी बढ़ती है, पर आजीविका के साधनों के मूल्य में हुई वृद्धि से कम बढ़ती है, तब भी वास्तविक मज़दूरी कम हो जाती है। बुर्जुआ वर्ग हमेशा मुद्रास्फीति, महंगाई और किराये बढ़ाकर सांकेतिक मज़दूरी और वास्तविक मज़दूरी के अन्तर को बढ़ाने और मज़दूर का शोषण करने में लगा रहता है।

सीटू की गुण्डागर्दी...

(पेज 5 से आगे)

शान्ति'' कायम करना बुद्धदेव बाबू की प्राथमिकता है। ऐसे में मज़दूरों की लड़ाइयों के नाम पर कवायद करने, मालिकों से साँठ-गाँठ कर मज़दूरों का उत्पीड़न करने, स्वतंत्र पहलकदमी लेकर संगठित होने की कोशिश करने वाले मज़दूरों पर हमले करने की कारगुज़ारियाँ अब सीटू की खास पहचान चुकी है। मज़दूरों के ऊपर सीटू के ये हमले पिछले दो दशकों में ज़्यादा तेज़ी के साथ बढ़े हैं जबसे सी. पी. एम. की अगुवाई वाली सरकारें औद्योगिक विकास के नाम पर देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हत्यारे लठैत की भूमिका में खुल्लमखुल्ला आ चुकी हैं। नन्दीग्राम नरसंहार इन नकली कम्युनिस्टों के फासिस्ट कारनामे का प्रतीक बन चुका है। ग़रीब किसानों की उपजाऊ ज़मीन एक विदेशी पूँजीपति को परोस देने के लिए सीपीएम काडरों ने नन्दीग्राम में जो खूनी ताण्डव किया वह कथनी में समाजवादी और करनी में फासीवादी-हिटलरी कारनामे की प्रतीक घटना बन चुका है। लाल झण्डा उड़ाते हुए पूँजीपतियों की ताबेदारी करने वाले इन घिनौने संशोधनवादियों के चेहरों को पहचानने में अब आम मज़दूर किसी गलतफ़हमी का शिकार नहीं है।

हालाँकि ये रंगे सियार अपनी पाखण्डी कवायदों से अब भी मज़दूरों को भरमाने में जुटे हुए हैं। एक तरफ 'सीटू' स्वतंत्र रूप से संगठित होने वाले ठेका मज़दूरों पर इस तरह के हमले करती है, दूसरी तरफ़ वह असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा कानून बनाने के लिए हो-हल्ला भी मचाती रहती है। मुँह से वाम-वाम चिल्लाना और बगल में छुरी रखकर मज़दूरों का गला रेतना सी.पी.एम.-सी.पी.आई. जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टियों का असली चरित्र है।

वेतन आयोग की मज़दूर विरोधी सिफारिशें...

(पेज 1 से आगे)

साथ ही परजीवी अफ़सरशाहों की सुख-सुविधाओं को बढ़ाने के काम आ रहा है। अफ़सरों की इसी जमात से पूँजीपतियों को अपने लूट के राज की हिफाज़त करनी है। इसलिए उन्हें मज़दूरों की लूट का एक हिस्सा ऊँची तनख्वाहों के रूप में देना मजबूरी है।

न्यूनतम और अधिकतम वेतन के बीच इस अन्तर को अधिकांश मध्य वर्ग के पढ़े-लिखे लोग बेहद स्वाभाविक मानते हैं क्योंकि वे भी मानसिक श्रम को शारीरिक श्रम से श्रेष्ठ मानने के पूँजीवादी तर्क को स्वीकार करते हैं। सामाजिक सम्पदा के बँटवारे में इतनी बड़ी असमानता पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की विशेषता है इसलिए वेतन आयोग की सिफारिशों पर आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए।

पिछले वेतन आयोग की सिफारिशें जब आयी थीं तब भूमण्डलीकरण की नीतियों की शुरुआत ही हुई थी। पिछले बारह वर्षों में यह प्रक्रिया काफ़ी आगे बढ़ चुकी है। देशी और विदेशी निजी पूँजी द्वारा देश की श्रमशक्ति और प्राकृतिक सम्पदा पर कब्ज़ा करने का अभियान आज काफ़ी आगे बढ़ चुका है। पूँजीवादी दायरे के भीतर अब इस प्रक्रिया को उलटा नहीं जा सकता। यहाँ खड़े होकर वेतन आयेग ने जो सिफारिशें दी हैं वे इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाने में मददगार होंगी। सरकारी दफ़्तरों में अफ़सरों की संख्या लगातार बढ़ रही है जबकि तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की संख्या लगातार घटती जा रही है। वेतन आयोग ने इस प्रक्रिया को और तेज़ कर दिया है। इसी के मद्देनज़र अब तक चले आ रहे कुल 35 मानक वेतनमानों के बजाय कई वेतनमानों को एक में मिलाकर वेतनमानों की संख्या केवल बीस कर दी गयी है। इसके चलते तृतीय श्रेणी के तकनीकी कर्मचारियों को उसी श्रेणी के गैर तकनीकी कर्मियों (बाबुओं)की तुलना में वेतनवृद्धि का नुकसान हुआ है जिससे तकनीकी कर्मचारी नाराज़ है और आन्दोलन के मूड में हैं।

पाँचवें वेतन आयोग की सिफारिशें आने के बाद भी इन्हीं विसंगतियों को लेकर गोरखपुर रेलवे के टेक्निकल और आर्टिज़न कर्मचारियों ने ए. आई. आर. एफ. के समझौतावादी रुख के कारण बगावत कर अपनी अलग यूनियन संगठित कर ली थी जिसका आगे चलकर 'टीयर' (टेक्निकल इम्प्लाइज़ एसोसियेशन ऑफ रेलवेज) में विलय हो गया था। छठे वेतन आयोग की सिफारिशें आने के बाद 'टीयर' ने तकनीकी कर्मचारियों के असन्तोष को भाँपते हुए आन्दोलन की घोषणा की है। देखना है 'टीयर' लड़ाई को कहाँ तक पहुँचाता है।

नये वेतन आयोग ने कार्य के आधार पर प्रमोशन करने की सिफारिश कर कर्मचारियों पर अफ़सरशाही के शिकंजे को और कस दिया है। इसे लेकर भी कर्मचारियों में बेहद असन्तोष है। इससे सरकारी दफ़्तरों में अफ़सरों की चापलूसी करने की प्रवृत्ति और बढ़ेगी तथा ईमानदारी और मेहनत से काम करने वाले कर्मचारियों को नुकसान होगा।

वेतन आयोग ने सफाईकर्मियों और चौकीदारों के पदों पर नयी भर्तियाँ रोकने और इस कैटगरी के खाली पड़े साढ़े तीन लाख पदों को खत्म करे देने की भी सिफ़ारिश की है। यह रेलवे सहित सभी केन्द्रीय प्रतिष्ठानों में ठेकाकरण की प्रक्रिया को तेज़ करने की सिफ़ारिश है।

वेतन आयोग की इन घोर मज़दूर विरोधी सिफारिशों के विरोध में केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की जो आवाजें उठ रही हैं वे मरियल हैं और केवल कर्मचारियों के असन्तोष के दबाव में वे संघर्ष के नाम पर कुछ कवायदें कर शान्त बैठ जायेंगी। सच तो यह है कि इन यूनियनों और सरकार के बीच अन्दरखाने में समझौता हो चुका है। इनकी कवायदों के बदले इक्का-दुक्का मामूली माँगों को मानकर सरकार वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने की घोषणा कर देगी।

इस बार भी आसार यही नज़र आ रहे हैं कि कर्मचारी अपने यूनियन नेतृत्व के विश्वासघात के बाद निराश होकर अपनी-अपनी ड्यूटी बजाने लगेंगे। या इससे भिन्न कुछ होगा? क्या आम कर्मचारियों का असन्तोष किसी नयी शुरुआत को जन्म देगा? आने वाला समय ही इसका जवाब देगा।

वेतन आयोग की मुख्य बदमाशियाँ

■ ग्रुप डी का ग्रुप सी में विलय। इससे ग्रुप डी के एक लाख खाली पड़े पद तुरन्त समाप्त हो जायेंगे। बाकी नौ लाख में से हाईस्कूल पास कर्मचारियों का ग्रुप सी में प्रमोशन। बाक़ी पद जैसे-जैसे कर्मचारी रिरटायर होते जायेंगे ख़त्म होते जायेंगे।

■ अफ़सरों-बाबुओं की तुलना में तकनीकी काम करने वाले कर्मचारियों के वेतनमान में काफ़ी कम बढ़ोत्तरी।

■ न्यूनतम-अधिकतम वेतनमान का अनुपात बढ़कर 1:12 हो गया है। पहले यह 1:10.7 था।

■ कार्य के आधार पर प्रमोशन नीति लागू करने की सिफ़ारिश। इससे नौकरशाही का शिकंजा और कसेगा। सरकारी दफ़्तरों में चापलूसी बढ़ेगी। ईमानदारी से काम करने वाले कर्मचारी घाटे में रहेंगे।

जनवादी केन्द्रीयता के बारे में

वर्ग संघर्ष के लिए पार्टी में जनवाद और केन्द्रीयता का वास्तविक मेल जरूरी

6. कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन में जनवादी केन्द्रीकरण का एकमात्र मतलब है सर्वहारा जनवाद और केन्द्रीयता का वास्तविक मेल, इन दोनों का एक-दूसरे के साथ मिला होना। इस प्रकार का सम्मिलन, सिर्फ पार्टी के समूचे संगठन द्वारा लगातार सामान्य कार्रवाइयों के आधार पर, निरन्तर सामान्य संघर्षों के आधार पर ही सम्भव हो सकता है। कम्युनिस्ट पार्टी संगठन में केन्द्रीकरण का मतलब रस्मी और मशीनी केन्द्रीकरण नहीं होता, बल्कि वह कम्युनिस्ट कार्रवाइयों का केन्द्रीकरण होता है, यानी इसका मतलब एक ऐसे नेतृत्व का निर्माण होता है जो युद्ध के लिए तैयार हो और साथ-साथ अपने को हर परिस्थिति के अनुकूल ढालने की क्षमता रखता हो। औपचारिक या यांत्रिक केन्द्रीकरण एक ऐसी औद्योगिक नौकरशाही के हाथों में ''सत्ता'' का केन्द्रीकरण होता है जो बाकी सदस्यों और संगठन के बाहर के क्रान्तिकारी सर्वहारा जनसमुदाय पर हावी होती है। सिर्फ कम्युनिज़्म के दुश्मन ही यह कह सकते हैं कि सर्वहारा वर्ग-संघर्ष का संचालन करती हुई और कम्युनिस्ट नेतृत्व को केन्द्रीकृत करती हुई, कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग पर शासन करने की कोशिश कर रही है। ऐसा दावा करना एक झूठ है। पार्टी के भीतर सत्ता के लिए होड़ या प्रभुत्व के लिए टकराव कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल द्वारा स्वीकृत जनवादी केन्द्रीयता के बुनियादी सिद्धान्तों से बिलकुल मेल नहीं खाता।

नौकरशाही और औपचारिक जनवाद-दोनों नहीं

पुराने,गैर कान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के संगठन में एक उसी किस्म की सर्वव्यापी द्विविधता (या द्वैतवाद) विकसित हो गया है जैसाकि बुर्जुआ राज्य में; यानी कि नौकरशाही और ''जनता'' के बीच की द्विविधता। पूँजीवादी माहौल के सुविचारित प्रभाव के अन्तर्गत, कामों का एक खास किस्म का बँटवारा विकसित हो गया है, साझा उद्यमों के जीवन्त सहमेल की जगह एक बाँझ किस्म के औपचारिक जनवाद ने ले ली है और संगठन एक ओर सक्रिय पदाधिकारियों और दूसरी ओर निष्क्रिय जनता में बँट गया है। क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन ने भी पूँजीवादी माहौल से कुछ हद तक द्विविधता की इस रुझान को अनिवार्य रुप से विरासत में हासिल कर लिया है।

व्यवस्थित ढंग से और लगातार जमकर किये गये राजनीतिक और सांगठनिक कार्य के ज़रिए और लगातार सुधार और परिष्कार के द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी को बुनियादी तौर से इस विरोध को समाप्त कर देना चाहिए।

7. एक समाजवादी जन पार्टी को एक कम्युनिस्ट पार्टी में बदलते समय, पार्टी को पुरानी व्यवस्था को अपरिवर्तित छोड़कर अपने को केन्द्रीय नेतृत्व के हाथों में प्राधिकार (अथॉरिटी) के संकेन्द्रण मात्र एक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। केन्द्रीकरण महज कागज़ों पर ही नहीं मौजूद रहना चाहिए, बल्कि वास्तव में अमल में आना चाहिए और यह केवल तभी सम्भव हो सकता है जबकि आम सदस्य यह महसूस करे कि यह केन्द्रीय 'अथॉरिटी' उनकी आम कार्रवाईयों और संघर्षों का एक मूलभूत रूप से प्रभावी उपकरण है। अन्यथा, यह जनता को पार्टी के भीतर नौकरशाही के रूप में दिखायी देगी और इसलिए, हर प्रकार के केन्द्रीकरण, हर प्रकार के नेतृत्व और सभी अनुवर्ती अनुशासन के विरोध को बल प्रदान करेगी, नौकरशाही के विपरीत ध्रुव पर अराजकता बल प्रदान करेगी।

संगठन में महज औपचारिक जनवाद न तो नौकरशाही और न ही अराजकता की प्रवृत्ति को दूर कर सकता है, बल्कि इसके विपरीत इन प्रवृत्तियों के लिए यही औपचारिक जनवाद उपजाऊ ज़मीन का काम करता है। इसलिए, एक मजबूत नेतृत्व तैयार करने के उद्देश्य में संगठन का केन्द्रीकरण तबतक हल नहीं हो सकता, जबतक कि उसे औपचारिक जनवाद के आधार पर हासिल करने की कोशिश की जायेगी। पार्टी के भीतर, उसके निर्देशक निकायों (यानी नेतृत्वकारी कमेटियों-सं.)और सदस्यों के बीच तथा पार्टी के बाहर के सर्वहारा जनसमुदाय के बीच जीवन्त साहचर्य और आपसी सम्बन्धों को विकसित करना और बनाये रखना इसकी आवश्यक पूर्वशर्त है।

—1921 में कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की तीसरी कांग्रेस में ***'कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन पर प्रस्ताव'*** शीर्षक दस्तावेज़ का एक अंश

लेनिन के जन्मदिवस (22 अप्रैल) के अवसर पर

वह ऐतिहासिक निर्णायक घड़ी

स्मोल्नी में

नेवा के किनारे पर, जहाँ वह एकाएक मुड़कर फ़िनलैण्ड खाड़ी की ओर बढ़ने लगती है, वहाँ पहले ज़माने में तारपीन की फ़ैक्ट्री हुआ करती थी। यहाँ बड़े-बड़े कड़ाहों में ''स्मोला'' यानी तारपीन तैयार किया जाता था।

बाद में फ़ैक्ट्री की जगह पर एक मठ बनाया गया और उसके बाद अभिजातवर्गीय बालिकाओं का विद्यालय। तारपीन फ़ैक्ट्री की जगह पर बना होने के कारण ही विद्यालय का नाम स्मोल्नी पड़।

1917 में ज़ार का तख़्ता पलटने के बाद विद्यालय को बन्द कर दिया गया। स्मोल्नी मज़दूरों और सिपाहियों के प्रतिनिधियों की पेत्रोग्राद सोवियत का कार्यालय बन गया। सैनिक-क्रान्तिकारी समिति सभी कारख़ानों से सम्पर्क बनाये रखती थी और उनमें लाल गार्ड टुकड़ियाँ संगठित करती थी। पेत्रोग्राद के बीस हज़ार मज़दूर हथियारों से लैस थे और क्रान्ति की शुरुआत के आह्वान का इन्तज़ार ही कर रहे थे। सैनिक-क्रान्तिकारी समिति ने बुर्जुआ सरकार और उसके प्रति वफ़ादार अफ़सरों के विरुद्ध बाल्टिक बेड़े के जहाज़ियों को उभाड़ने के लिए बोल्शेविक कमिसार भेजे। जहाजी संघर्ष के लिए तैयार हो गये। सिपाहियों की भी असंख्य टुकड़ियाँ बोल्शेविकों और सैनिक-क्रान्तिकारी समिति के पक्ष में हो गयीं।

जहाँ तक अस्थायी सरकार का सवाल है, तो वह बोल्शेविकों और मज़दूरों से डरती थी।

उसने आदेश जारी किया :

''मज़दूरों के हथियार रखने पर पाबन्दी लगायी जाती है। समिति के सभी सदस्यों को गिरफ़्तार किया जाये! लेनिन को पकड़कर काल-कोठरी में बन्द कर दिया जाये!''

निश्चय ही अस्थायी सरकार हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठी थी। वह बोल्शेविकों और मज़दूरों के विरुद्ध अपनी सारी ताकतें समेट रही थी, फौजों को वापस बुलाकर पेत्रोग्राद की घेराबन्दी करने की कोशिश कर रही थी, ताकि क्रान्तिकारी बाहर की दुनिया से कट जायें।

लेनिन ने केन्द्रीय समिति के सदस्यों को लिखा कि अब क्रान्ति को और स्थगित करना ठीक न होगा। निर्णायक घड़ी आ गयी है!

चौबीस अक्टूबर को व्लादीमिर इल्यीच ने केन्द्रीय समिति के नाम एक सन्देश फिर भेजा। फ़ोफ़ानोवा उसका जवाब लायी थी। सड़क पर अगर किसी अफ़सर ने उन्हें देख लिया, तो वह गोली चला सकता है।

व्लादीमिर इल्यीच के नेतृत्व में केन्द्रीय समिति निर्णायक लड़ाई की अन्तिम तैयारियाँ कर रही थी। लेकिन क्रान्ति का ठीक समय अभी तय नहीं किया गया था।

अगले दिन 25 अक्टूबर को स्मोल्नी में सोवियतों की दूसरी कांग्रेस शुरू होने वाली थी। उसमें भाग लेने के लिए सभी नगरों से प्रतिनिधि आये थे। ''क्रान्ति को आज ही, सोवियतों की कांग्रेस के उद्घाटन से पहले ही शुरू करना ज़रूरी है,'' व्लादीमिर इल्यीच सोच रहे थे। ''आज अस्थायी सरकार को अपदस्थ कर कल सारी सत्ता सोवियतों को सौंप दी जाये।''

किन्तु समय तो बीत रहा था। उन्होंने केन्द्रीय समिति को एक नोट और भेजा। उन्हें चैन नहीं था। सेर्दोबोल्स्काया सड़क के इस साफ़-सुथरे फ़्लैट में और ठहरना इस समय उन्हें भारी लग रहा था। यहाँ तक कि खुलकर चलहक़दमी भी नहीं कर सकते थे। कहीं कोई सुन न ले

और पूछ न बैठे कि वहाँ, फ़ोफ़ानोवा के यहाँ कौन है?

शाम को फ़ोफ़ानोवा काम से लौटी। व्लादीमिर इल्यीच ने उसे दम भी नहीं लेने दिया कि कहा :

''कृपया, एक पत्र और पहुँचा दीजिये। अभी, इसी क्षण। नहीं, नहीं, कोट मत उतारिये। मैं अभी....''

और तेज़ी से कमरे में जाकर केन्द्रीय समिति के सदस्यों को लिखने लगे :

''साथियो!

''मैं ये पंक्तियाँ 24 तारीख़ की शाम को लिख रहा हूँ। स्थिति बेहद नाज़ुक है। बिल्कुल साफ़ है कि अब सचमुच ही क्रान्ति को और टालना मौत को बुलावा देना है।''

आगे उन्होंने लिखा कि आज ही क्रान्ति शुरू करना अस्थायी सरकार को अपदस्थ कर सत्ता अपने हाथों में लेना अत्यावश्यक है। अगर आज हम फ़ैसला नहीं कर पाये, तो इतिहास इस चूक के लिए हमें कभी माफ़ नहीं करेगा। कल तक देर हो सकती है। अन्तिम और निर्णायक घड़ी आज है।

''इस पत्र को तुरन्त पहुँचा दीजिये,'' लेनिन ने अधीरता के साथ फ़ोफ़ानोवा से अनुराध किया।

और फिर वह फ़्लैट में अकेले रह गये। उनकी व्याकुलता की सीमा नहीं थी! वह बैठ गये, मानो कुछ सुन रहे थे, किसी चीज़ का इन्तज़ार कर रहे हों। कुछ समय बाद सचमुच दरवाज़े की घण्टी बजी। एइनो राहिया ने अन्दर प्रवेश किया।

''व्लादीमिर इल्यीच, सोच सकते हैं कि शहर में क्या हो रहा है!'' और फिर खुद ही बताने लगा। बाहर मौसम ऐसा है कि घर से बाहर निकलना भी मुश्किल है। नेवा की तरफ़ से ठण्डी हवा के तेज़ झोंके चल रहे हैं। सड़कें कोहरे से ढँकी हैं। गीली बर्फ़ गिर रही है। बीच में कभी-कभी बारिश की झिरझिरी भी शुरू हो जाती है। मगर लोग फिर भी जहाँ-तहाँ फाटकों के पास इकट्ठा हो रहे हैं। कभी-कभी कहीं से गोलियाँ चलने की आवाज़ें आ जाती हैं। फिर सब शान्त हो जाता है। वातावरण अत्यधिक तनावपूर्ण बना हुआ है।

पुलों के पास अलाव जले हुए हैं। लाल गार्ड पुलों पर पहरा दे रहे हैं। दिन में अस्थायी सरकार ने नेवा के सभी पुलों से राहगीरों को खदेड़कर ट्रैफ़िक रोकने की कोशिशें कीं। मगर वे निकोलायेव्स्की पुल ही खोल पाये थे कि हमारे लोग आ गये। उन्होंने युंकरों को खदेड़ दिया।

अगर युंकर सभी पुलों को खोल देते तो आफ़त हो जाती। सभी इलाके एक दूसरे से कट जाते और तब युंकर एक-एक करके सभी क्रान्तिकारी मज़दूरों को दबा देते।

व्लादीमिर इल्यीच खामोशी से राहिया को सुनते रहे। फिर झटके से कुर्सी से खड़े हुए और बिना कुछ कहे अलमारी से अपने नकली बाल निकाले। ''यह क्या कर रहे हैं?'' राहिया को चिन्ता हुई। पार्टी ने उसे, एइनो राहिया को, लेनिन की सुरक्षा का काम सौंपा था।

''युंकर आपको मार डालेंगे!''

व्लादीमिर इल्यीच ने कोई जवाब नहीं दिया और चुपचाप आइने के सामने खड़े होकर नक़ली बाल पहनने लगे। फिर पुराना-सा कोट और ओवरकोट भी पहना। राहिया समझ गया कि उनसे बहस करना बेकार है, इसलिए खुद भी चलने की तैयारी करने लगा।

फिर यह भी तय हुआ कि व्लादीमिर इल्यीच दाँत दुखने का बहाना कर गाल पर पट्टी बाँध लें। तब कोई भी उन्हें पहचान नहीं पायेगा।

वे घर से निकले। व्लादीमिर इल्यीच स्मोल्नी जा रहे थे।

—मरीया प्रिलेज़ायेवा की पुस्तक ***'लेनिन कथा'*** *का एक अंश*

रपट

शहीदेआज़म भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरु के 77वें शहादत दिवस पर

नई क्रान्ति की राह पर चलने का आह्वान

दिल्ली में क्रान्तिकारी सप्ताह के तहत विभिन्न कार्यक्रम

दिल्ली। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के शहादत दिवस के मौके पर नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने 23 मार्च से 30 मार्च तक दिल्ली में क्रान्तिकारी सप्ताह मनाया। इस दौरान विभिन्न स्थानों पर प्रभात फेरी, नुक्कड़ सभाएँ, बैठकें, विचार-प्रचार अभियान, सघन पर्चा वितरण, मशाल जुलूस और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

23 मार्च को करावल नगर क्षेत्र में दिशा और नौ.भा.स. के कार्यकर्ताओं ने सुबह क्रान्तिकारी गीतों और नारों के साथ प्रभातफेरी निकाली। उसके बाद पूरे दिन कार्यकर्ताओं की टोली ने इलाके की गलियों में जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ करते हुए और पर्चे बाँटते हुए अभियान चलाया। शाम को पूरे क्षेत्र में मशाल जुलूस निकाला गया।

क्रान्तिकारी सप्ताह के समापन के अवसर पर 30 मार्च को रोहिणी से दिलशाद गार्डन तक क्रान्तिकारी विचार-प्रचार यात्रा निकाली गई।

क्रान्तिकारियों के चित्रों एवं नारों से सजी बस के साथ कार्यकर्ताओं की टोली ने रोहिणी के विभिन्न सेक्टरों, बादली मोड़, भजनपुरा, करावलनगर, अंकुर एन्क्लेव, चाँदपुरा, मुस्तफाबाद तथा दिलशाद गार्डन के अनेक स्थानों पर पर नुक्कड़ सभाएँ कीं, क्रान्तिकारियों के जीवन एवं विचारों पर आधारित नुक्कड़ नाटक और क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किए तथा उद्धरणों एवं कविताओं के पोस्टरों और क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनियाँ लगायीं। अभियान टोली ने पूरे रास्ते में क्रान्तिकारियों के सपनों और आज के हालात पर केन्द्रित पर्चों का सघन वितरण भी किया। यात्रा टोली के साथ विहान और निशान्त नाट्य मंच के संस्कृति कर्मी भी शामिल थे। सांस्कृतिक टोली ने अनेक क्रान्तिकारी गीत पेश किए। निशांत की ओर से भगतसिंह के जीवन पर आधारित नुक्कड़ नाटक 'इंकलाब ज़िन्दाबाद' और अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ पेश किया लघु नाटक दर्शकों ने पसन्द किया।

सभाओं में दिशा छात्र संगठन के अभिनव ने बताया कि आज भगतसिंह को याद करने का मक़सद उस अधूरी यात्रा को मुकाम तक पहुँचाना है जिसे भगतसिंह और उनकी पीढ़ी के क्रान्तिकारियों ने शुरू किया था। उन्होंने कहा कि शोषणमुक्त और समतामूलक व्यवस्था के निर्माण के भगतसिंह के पैगाम को गाँव-गाँव बस्ती-बस्ती तक पहुँचाना होगा। नौजवानों की यह टोली यही काम अंजाम देने की कोशिश कर रही है।

दिशा छात्र संगठन की शिवानी ने सभाओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि यह लड़ाई जितनी समाज के पुरुषों के सामने है, उससे कहीं ज़्यादा इस समाज की स्त्रियों के सामने है, जो पूँजीवाद और पितृसत्ता की दोहरी गुलामी की शिकार हैं। नौजवान भारत सभा के आशीष ने भगतसिंह के अधूरे सपने को पूरा करने के लिए नौजवानों का आह्वान करते हुए कहा कि इस या उस चुनावबाज पार्टी के भरम में पड़े रहने के बजाय उन्हें सच्ची आज़ादी के लिए लम्बी लड़ाई की तैयारी में जुट जाना चाहिए।

निशान्त नाट्य मंच के शम्सुल इस्लाम ने लोगों को भगतसिंह और तमाम क्रान्तिकारियों की साझी शहादत और साझी विरासत की याद दिलाते हुए कहा कि हमें जाति-धरम के नाम पर आपस में लड़ाने की सभी साजिशों को समझना होगा और एकजुट होकर एक नया हिन्दुस्तान बनाने के लिए लड़ना होगा।

दिलशाद गार्डन के जीटीबी अस्पताल आवासीय परिसर में शाम 7.00 बजे से देर रात तक चली सभा और सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ यात्रा का समापन हुआ। इस मौके पर क्रान्तिकारी साहित्य और पोस्टरों की प्रदर्शनी भी लगाई गई थी।

लुधियाना : क्रान्तिकारियों की याद में सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं नि:शुल्क मेडिकल कैम्प का आयोजन

बिगुल मज़दूर दस्ता व नौजवान भारत सभा की ओर से महान क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरु की याद में लुधियाना शहर में 16 मार्च और 23 मार्च को दो अलग-अलग स्थानों पर क्रान्तिकारी नाटकों व गीतों के कार्यक्रम किए गए। लुधियाना की चण्डीगढ़ रोड पर स्थित ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी में 16 मार्च को ओर गयासपुरा के लक्ष्मण नगर में 23 मार्च को ये कार्यक्रम किए गए। नौजवान भारत सभा व बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं द्वारा दो नाटक पेश किए गए। ये नाटक थे दविन्दर दमन द्वारा लिखा गया शहीद भगतसिंह के जीवन के अन्तिम समय पर आधारित नाटक ''शहादत से पहले'' और कृष्ण चन्दर की कहानी पर आधारित नाटक ''गड्ढा''। बिगुल मज़दूर दस्ता की टोली द्वारा ''धरती को सोना बनाने वाले भाई रे'', ''जारी है जारी है अभी लड़ाई जारी है'', ''मशालां बाल के चलणा जदों तक रात बाकी है'' आदि क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किए गए। 23 मार्च को गयासपुरा के लक्ष्मण नगर में हुए कार्यक्रम में छोटे बच्चों की अच्छी भूमिका रही। बच्चों ने भी ''गड्ढा'' नाटक अपने ही अन्दाज में पेश किया। बच्चों द्वारा पेश किए गए गीतों व कविताओं को लोगों ने काफी पसन्द किया। बच्चों को प्रोत्साहन के तौर पर क्रान्तिकारियों के पोस्टर उपहार के रूप में दिए गए।

दोनों ही स्थानों पर नौजवान भारत सभा के पंजाब के संयोजक राजविन्दर द्वारा लोगों को सम्बोधित किया गया। उन्होंने नौजवानों को शहीद भगतसिंह व उनके साथियों के सपनों को पूरा करने के लिए आगे आने का आह्वान किया।

30 मार्च 2008 को लुधियाना के गयासपुरा इलाके में एक नि:शुल्क मेडिकल कैम्प लगाया गया। इस कैम्प में कुल 405 मरीजों की जाँच की गई और उन्हें दवाइयाँ दी गयी। महत्वपूर्ण यह है कि यह मेडिकल कैम्प किसी अमीर द्वारा ग़रीबों की ''सेवा'' के लिए लगाए गए कैम्प जैसा कोई दिखावटी कैम्प नहीं था बल्कि नौभास और बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा गयासपुरा के लक्ष्मण नगर, गगन नगर, न्यू गगन नगर, पख्खर कालोनी आदि में से फैक्ट्री मज़दूरों व अन्य साधारण से काम धन्धे करने वाले ग़रीब मेहनतकश लोगों से ही इकट्ठे किए गए आर्थिक सहयोग से लगाया गया था। दिखावे के लिए लगाए जाने वाले मेडिकल कैम्पों की तरह इस कैम्प के उद्घाटन के लिए किसी चुनावी लीडर, मौजूदा या भूतपूर्व काउंसिलर आदि को नहीं बुलाया गया और न ही इन व्यक्तियों से किसी भी प्रकार की कोई मदद ली गई। कहा जाना चाहिए कि यह मज़दूरों और अन्य मेहनतकशों द्वारा खुद द्वारा खुद के लिए लगाया गया मेडिकल कैम्प था।

इस मेडिकल कैम्प में यह सच्चाई सामने आयी कि अधिकांश मज़दूर कुपोषण के शिकार हैं। अधिकतर मज़दूरों में खून की कमी रहती है। कारण यह है कि सख्त मेहनत करने के बावजूद उन्हें इतनी आमदनी भी नहीं होती कि वे खाने-पीने की अपनी जरूरतें पूरी कर सकें। जो भोजन वे जुटा पाते हैं वह जरूरी तत्वों के नजरिए से कम कम से मापदण्ड भी पूरे नहीं करता। यह बात भी सामने आई कि ग़रीबों में चमड़ी के रोगों की भरमार है। जब छोटे-छोटे कमरों में एक-साथ कई-कई लोगों को रहना पड़े तो सोने और पहनने के लिए साझे कपड़ों का इस्तेमाल होने लगता है। ऐसे में लोग आसानी से चमड़ी के रोगों का शिकार हो जाते हैं।

उल्लेखनीय है कि औद्योगिक मज़दूरों और मेहनतकशों की भारी आबादी वाले इस गयासपुरा इलाके में साफ़-सफाई, पीने के लिए साफ पानी, इलाज के लिए अस्पताल और डिस्पेंसरियों का सरकार व प्रशासन की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं है। इस क्षेत्र में हर वर्ष गर्मियों में हैजा फैलने के कारण कई लोग मौत का शिकार हो जाते हैं।

नौभास पंजाब के संयोजक राजविन्दर ने जानकारी दी कि नौभास व बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से गयासपुरा में लगाया गया यह दूसरा मेडिकल कैम्प था। पहला कैम्प 25 मार्च 2007 को आयोजित किया गया था। उन्होंने कहा कि नौभास और बिगुल मज़दूर दस्ता नियमित तौर पर मेडिकल कैम्प आयोजित करेगी। अधिक नि:शुल्क मेडिकल कैम्पों में दवा के लिए आर्थिक समस्या को सामना करना पड़ सकता है। लेकिन मुफ्त मेडिकल चेकअप काफ़ी आसान होगा। उन्होंने कहा कि नि:शुल्क मेडिकल चेकअप कैम्प आयेजित करने की योजना को बहुत ही जल्द व्यवहार में लाया जाएगा।

श्री राजविन्दर ने कहा कि आज जब इस मुनाफाखोर पूँजीवादी व्यवस्था ने साधारण लोगों से सभी स्वास्थ्य सुविधाएँ छीन ली हैं तो ऐसे में जहाँ लोगों को सेहत सुविधाओं की पूर्ति के लिए इस व्यवस्था को तबाह करना होगा और मानव केन्द्रित व्यवस्था बनाने के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाना होगा। वहीं साथ-साथ अपनी सामूहिक पहलकदमी के साथ जहाँ तक हो सकता है सेहत-सुविधाओं का प्रबन्ध खुद भी करना होगा।

नोएडा-गाजियाबाद : हमें इतिहास से सबक लेना होगा

नोएडा। शहीद भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के 77वें शहादत दिवस पर बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा नोएडा-गाजियाबाद इकाई द्वारा कई कार्यक्रम किये गये। कार्यक्रम की शुरुआत नोएडा के सेक्टर 12 के प्रियदर्शिनी पार्क से की गयी। यहाँ पर भगतसिंह के उद्धरणों एवं क्रान्तिकारियों के चित्र लगाकर एक कोने को क्रार्यक्रम-स्थल की शक्ल दे दी गयी थी। सबसे पहले कुछ क्रान्तिकारी गीत जैसे-'ये किसका लहू है' व 'आँधी के झूले पर झूलो' आदि गाये गये। इसके बाद सभा को सम्बोधित करते हुए बिगुल मज़दूर दस्ता के जनार्दन ने कहा कि भगतसिंह और उनके साथी केवल विदेशी ताकत ही नहीं, बल्कि देशी शासकों के खिलाफ भी लड़ रहे थे। वह मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के खिलाफ थे। उनका संघर्ष पूँजीवाद के खिलाफ़ था। उन्होंने आगे कहा कि मज़दूर, किसान और ग़रीबों को वास्तविक आज़ादी हासिल करने के लिए इतिहास से सबक लेना होगा और समतामूलक समाज बनाने के संघर्ष को आगे बढ़ाना होगा। नौजवान भारत सभा के नन्दलाल ने कहा कि भगतसिंह का नाम जनता को लड़ने की प्रेरणा देने वाली अनवरत जलती मशाल के समान है। उनकी शहादत हमें उनके अधूरे कामों को पूरा करने की चुनौती देती है और मेहनतकशों के बेटे-बेटी इस चुनौती को स्वीकार कर रहे हैं।

कार्यक्रम की खास विशेषता यह रही कि उसमें अलग-अलग तरह के लोगों की भागीदारी थी। जहाँ कुछ अधेड़ मज़दूर आये थे तो नौजवान मज़दूरों ने भी उत्साह से भागीदारी की। खाँटी मेहनत का काम करने वाले से लेकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में ऊपरी तौर पर अच्छा पर वास्तव में बेहद

(पेज 11 पर जारी)

द्वितीय विश्व युद्ध में हिटलर को दरअसल किसने हराया?

स्तालिनग्राद की गलियों में लड़ने वाले लाल योद्धाओं ने!

दुनिया का पूँजीवादी मीडिया एक ओर नये-नये मनगढ़न्त किस्सों का प्रचार कर मज़दूर वर्ग के महान नेताओं के चरित्र हनन में जुटा रहता है वहीं दूसरी ओर नये-नये झूठ गढ़कर उसके महान संघर्षों के इतिहास की सच्चाइयों को भी उसके नीचे दबा देने की कवायदें भी जारी रहती हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बारे में भी तरह-तरह के झूठ का प्रचार लगातार जारी रहता है। इतिहास की किताबों में भी यह सच्चाई नहीं उभर पाती कि मानवता के दुश्मन, नाजीवादी जल्लाद हिटलर को दरअसल किसने हराया?

अमेरिकी और ब्रिटिश मीडिया ख़ास तौर पर इस झूठ का बार-बार प्रचार करता है कि उनकी फौजों ने हिटलर को मात दी। इस झूठ को सच साबित करने के लिए वे उस तथाकथित 'कयामत के दिन' (डी-डे) 6 जून 1944 का बार-बार प्रचार करते हैं जब एक लाख पचास हज़ार की तादाद में ब्रिटिश-अमेरिकी सेनाएँ हिटलर की सेनाओं से लड़ने के लिए नारमैंडी (फ्रांस) में उतरी थीं। जोर-शोर से प्रचार यह किया जाता है कि इसी आक्रमण से यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध का पासा पलट गया था। जबकि सच्चाई यह है कि उस युद्ध का मुख्य मोड़बिन्दु तो वोल्गा नदी के किनारे बसे हुए एक रूसी शहर से आया था। 1942 में स्तालिनग्राद शहर की गलियों में 80 दिन और 80 रात जो लड़ाई चली, तत्कालीन सोवियत संघ के लाल सैनिकों और मज़दूरों ने परम्परागत देशी हथियारों से आधुनिकतम मानी जाने वाली जर्मन नाजी सेना का जिस तरह मुकाबला किया, वह विश्वयुद्ध का ऐतिहासिक मोड़बिन्दु था। यह कहानी विश्व इतिहास की एक महाकाव्यात्मक संघर्ष गाथा है जिसे दुनिया की मेहनतकश जनता की यादों से मिटा देने की कोशिशें दिन-रात चलती रहती हैं।

आज विश्व सर्वहारा क्रान्ति के इस नये चक्र में, जबकि नयी क्रान्तियों की तैयारियों का काल लम्बा खिंचता जा रहा है, यह बेहद ज़रूरी है कि नयी पीढ़ी के मेहनतकशों को अतीत के महान संघर्षों की विरासत और उपलब्धियों से लगातार परिचित कराते रहा जाये। यह नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन का एक ज़रूरी कार्यभार है। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक और नेता स्तालिन की पचपनवीं पुण्यतिथि (6 मार्च) के अवसर पर हमने बिगुल के पिछले अंक में पाठकों के लिए इस विशेष सामग्री की पहली किस्त प्रकाशित की थी। इस अंक में हम इस लेख की दूसरी किस्त दे रहे हैं। –सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

हिटलर का भाग्य-निर्णायक हमला

1941 का जाड़ा घिर आने तक, जर्मन आक्रमण अपनी प्रत्याशित त्वरित विजय हासिल नहीं कर सका था। जर्मन सेनाओं ने पूर्वी सोवियत संघ के भारी हिस्सों को जीत भले लिया था, लेकिन वे रूसी क्षेत्र में काफी दूर आ फंसी थीं। और जर्मनों को अपनी हजारों मील लम्बी खिच चुकी सप्लाई लाइनों को उफनते छापामार युद्ध से बचाना पड़ रहा था। विकट युद्ध और निष्ठुर जाड़े ने कम से कम पन्द्रह लाख नाजियों की जानें ले लीं।

1942 के मध्य तक, जर्मन सेना, जो हालाँकि अभी भी शक्तिशाली थी, पूरे मोर्चे पर अब और कोई सामान्य आक्रमण कर सकने की स्थिति में नहीं रह गयी थी। हिटलर को अपने ग्रीष्मकालीन आक्रमण हेतु सिर्फ एक ठिकाना चुनना था। उसने 15,00,000 सैनिकों की फौज को दक्षिण-पश्चिम मार्च करने का हुक्म दिया ताकि काकेशस पहाड़ियों में स्थिति रूसी तेल-क्षेत्रों पर कब्जा किया जा सके। उसकी मंशा यह थी कि सावियत तेल सप्लाई को काटकर उसे स्वयं अपनी टैंक-सेना को सप्लाई किया जाये।

हिटलर ने अधिकतम सम्भव सेनाएँ जमा कर दी, अपने कई सर्वश्रेष्ठ जनरलों को नियत किया और यहाँ तक कि उत्तरी अफ्रीका के युद्ध मोर्चे पर लगे विमानों और टैंको को भी मँगा लिया। उसने अपनी सेनाओं को आदेश दिया कि पहले वे स्तालिनग्राद पर कब्जा करें, ताकि जर्मनी के उत्तरी बाजू के मोर्चे को सुस्थिर किया जा सके। उसके बाद नाजी योजना यह थी कि दक्षिण में और अधिक महत्व के ठिकानों की ओर बढ़ा जाये।

माओ त्से-तुङ ने इस आक्रमण के बारे में कहा कि यह ''एक ऐसा अन्तिम आक्रमण था जिसपर फासीवाद का भाग्य टँगा हुआ था।''

23 अगस्त को, जनरल फेडरिख फॉन पाउलस की कमान वाली छठवीं जनरल सेना वोल्गा नदी पार करके स्तालिनग्राद के उत्तर में आ गयी। विमानों द्वारा हज़ारों की संख्या में बम शहर पर गिराये जाने लगे और शहर आग की लपटों में धू-धू करके जलने लगा। एक इतिहासकार ने लिखा ''स्तालिनग्राद ऐसा दिखायी देता था जैसे किसी भयंकर आँधी ने इसे हवा में उठाकर लाखों टुकड़ों में विदीर्ण कर डाला हो। शहर का मुख्य भाग लगभग पूरी तरह ध्वस्त हो चुका था, और लगभग एक सौ भवनखण्ड अभी भी प्रचण्ड आग की ज्वाला में घिरे हुए थे।'' पानी के मेन लाइनों के टूट जाने के कारण आग बुझाना असम्भव हो गया था। इस आक्रमण में दसियों हज़ार लोग मारे गये। कम्युनिस्ट युवा संगठन के किशोरों ने आग और मलबे में जीवित बचे लोगों की सामूहिक खोजबीन करने के लिए जगह-जगह लोगों को संगठित किया।

इसी बीच नाजी सेना की मोटर-चालित टैंकें और पैदल-सेना ने स्तालिनग्राद पर, जो कि वोल्गा नदी के पश्चिमी किनारे की पहाड़ी ऊँचाइयों तक फैला हुआ था, धावा बोल दिया। जर्मनों की योजना यह थी कि सोवियत हथियारबन्द सेनाओं को वोल्गा नदी की ओर ऊँचाइयों तक धकेल कर परास्त कर दिया जाये। उनकी योजना 24 घण्टों में ही विजय प्राप्त कर लेने की थी।

स्तालिन के नाम के शहर में मोर्चा लेना सोवियत नेता जोसेफ स्तालिन और सोवियत हाई कमान की एक भिन्न सोच थी : सोवियत सेनाओं के सुदूर दोन नदी तक पीछे हट जाने के बाद अब उन्होंने तय किया था कि वे स्तालिनग्राद में टिक कर मोर्चा लेंगे। एस. जे. लेनार्ड अपनी पुस्तक 'न्यायपूर्ण युद्ध, अन्यायपूर्ण युद्ध : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण' में लिखते हैं :

''बहुतों को ऐसा लगता था मानो सोवियत संघ ध्वस्त हो जाने के कगार पर था, लकिन सुदूर दोन नदी तक पीछे हटने का वस्तुत: ऐसा कुछ भी मतलब नहीं था। इससे तो समय ही मिल गया था कि केन्द्र से सोवियत डिवीजनें दक्षिणी मोर्चे के लिए कूच कर सकें, तथा पूर्वी उराल से भी फौज और साजो-समान की मदद पहुँचायी जा सके। इस पीछे हटने का महत्व इस बात में निहित था कि, आखिरकार, सोवियतें ब्लिट्ज़क्रीग के विरुद्ध लचीले रणकौशल अपनाना सीख रही थीं, बजाय टिक कर मोर्चा लेने की परम्परागत पद्धति अपनाने के, जिसके चलते उन्हें बार-बार घेरेबन्दी में फँस जाना पड़ता था।

''अत: कमजोरी के इसी महानतम क्षण में भावी विजय के बीज निहित थे, और इसका महत्व तब समझ में आया जब कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने हजारों सर्वश्रेष्ठ कैडरों को स्तालिनग्राद लाने का अभियान शुरू किया, ताकि उस शहर को, वेरमाख्त (जर्मन सेना) के लिए कठिनतम सम्भव राजनीतिक और सैनिक चुनौती के रूप में तब्दील किया जा सके। ''नेतृत्व की योजना थी कि स्तालिनग्राद को एक ऐसे स्पंज के रूप में तब्दील कर दिया जाये जो अधिक से अधिक जर्मन शहर में फँसे रहते, तब तक सोवियत सैनिक कमान गुप्तरीति से भारी संख्या में सेना को शहर में उत्तर और दक्षिण में जमा कर लेती, वे घेरेबन्दी का एक फन्दा तैयार कर रहे थे–ताकि जर्मनी की समूची छठवीं सेना को घेरकर नेस्तानाबूद कर दिया जाये।

उग्र शहरी लड़ाई इस कम्युनिस्ट योजना की कुंजी थी। कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने हज़ारों सर्वश्रेष्ठ सक्रिय कार्यकर्ताओं को स्तालिनग्राद में भेजना शुरू कर दिया।

आप उन जबर्दस्त तैयारियों और प्रचण्ड राजनीतिक बहसों का अनुमान करें जो तभी से शुरू हो गयी थीं जब शक्तिशाली नाजी सेना सोवियत-सीमा की मोर्चाबन्दियों को तोड़कर घुस पड़ी थी और इस समाजवादी शहर की ओर बढ़ने लगी थी। कम्युनिस्ट संगठनों के नेतृत्व में,मशहूर 'बैरिकेड' और 'लाल अक्टूबर' ट्रैक्टर फैक्टिरयों एवं शहर के पावर स्टेशन को सैन्य तैयारियों के केन्द्रों में तब्दील कर दिया गया। हजारों मज़दूर बाँहपट्टियों एवं राइफलों से लैस हो युद्ध इकाइयों में संगठित हो गये। प्रथम गृहयुद्ध के पके बालों वाले पुराने अनुभवी सिपाही, ढलाई-मज़दूर, ट्रैक्टर इन्जीनियर, वोल्गा के नाविक, रेलवे मज़दूर, जहाज निर्माता, दफ्तरी कर्मचारी-स्त्री और पुरुष-सभी के सभी नियमित सेना के जवानों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने के लिए तैयार हो गये। फैक्टरी की दीवारों से चारों ओर मज़दूरों के दूसरे दस्ते मोर्चाबन्दी के लिए खाइयाँ खोदने में लग गये।

जैसे ही जर्मन सेनाएँ आगे बढ़ीं, स्तालिनग्राद की जनता फसल काटने और टैंक-रोधी मोर्चे की खाइयाँ खोदने दौड़ पड़ी, और शहर के 5,00,000 निवासियों में से अधिकांश को हटाकर वोल्गा के सुरक्षित पूर्वी किनारे पर पहुँचा दिया गया। जर्मनी के बमवर्षकों ने लोगों को लेकर नदी पार कर रही कई नावों पर हमले किये तथा नदी के तटों पर बड़ी तादाद में बसे असैनिक नागरिकों पर भी भारी बमबारी की।

एक बुर्जुआ इतिहासकार ने स्तालिनग्राद की खाइयों के बाह्यांचलों में लड़ी गयी पहली लड़ाई के बारे में लिखा : ''यह एक चमत्कार ही था कि रातो-रात संगठन बनाकर रूसी नागरिक सेना ने एक दूसरे से जोड़ती हुई खन्दकें खोद डाली थीं तथा आधुनिक युद्ध कला की मूलभूत बातों को आत्मसात कर लिया था। वे कामगारी वर्दियों या रविवारीय पोशाकें पहनकर मॉर्टर तोपों और मशीनगनों के पीछे घुटने मोड़कर बैठ जाते और दुनिया की सबसे बेहतरीन टैंक-सेना को चुनौती देते। जब (जर्मन सेना का) लड़ाकू ग्रुप क्रुपेन उनकी भयंकर गोलाबारी से लड़खड़ा जाता, तब तो रूसी प्रत्याक्रमण भी चालू कर देते। इसके लिए वे फैक्टरी असेम्बली लाइन्स से तुरन्त निकले बिना रंगे टी-34 टैंक लेकर सीधे जर्मनों पर हल्ला बोल देते।''

इसी बीच तीखा नीतिगत संघर्ष भी स्थानीय पार्टी के पराजयवादियों और सैनिक नेतृत्व के साथ शुरू हो गया था, जिनका मानना था कि स्तालिनग्राद को बचा पाना असम्भव था और इसीलिए वे चाहते थे कि वोल्गा के उस पार भाग चला जाये। लेकिन स्तालिन ने शहर को छोड़ भागने की किसी भी योजना को इंकार कर दिया और कहा : ''सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भगदड़ न पैदा होने दी जाये, दुश्मन की धमकियों से मत डरो और कि अन्तिम विजय हमारी होगी–इस बात में आस्था रखो।'' यह नीतिगत संघर्ष पूरे युद्ध-काल तक विभिन्न स्तरों पर जारी रहा। महत्वपूर्ण बात यह थी कि युद्ध का फौरी नेतृत्व करने वाले जनरल चुइकोव को स्तालिन के दृढ़ विजय-संकल्प पर पूरा विश्वास था।

बेशक सैनिकों और मज़दूरों के समुदायों को यह नहीं बताया जा सका था कि नेतृत्व ने जर्मनों को घेर लेने की मुकम्मिल गुप्त योजना तैयार कर रखी थी। लेकिन जब जान की बाजी लगाकर स्तालिनग्राद को बचाये रखने के लिए लड़ाई करने के आदेश आये, तब तो जनसमुदायों को तेजी से समझ में आने लगा कि उनके कन्धों पर एक ऐतिहासिक दायित्व आ पड़ा था। लोगों के दिलों में एक अटूट एकता और दृढ़निश्चय की भावना भर उठी। उनका गर्वीला नारा गूँज उठा : ''स्तालिनग्राद हिटलर की कब्र बनेगा!''

अब एक ऐतिहासिक नाटक की प्रस्तुति के लिए रंगमंच तैयार हो चुका था।

गली-गली में लड़ाई

जर्मनों ने सैनिकों, टैंकों और वायुयानों की एक विशाल बेहतरीन शक्ति शहर के ऊपर झोंक दी थी। शुरू हुए विकट संघर्ष का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता था कि जर्मन एक दिन में केवल कुछ सौ गज ही आगे बढ़ पाते थे। जब नाजी 10 सितम्बर को दक्षिण में वोल्गा के पास पहुँचे, तो वे बासठवीं सेना को स्तालिनग्राद के भीतर अपना निशाना बना चुके थे, जो कि वोल्गा नदी की ओर पीठ किये थी। गली-गली में विकट युद्ध शुरू हो गया।

13 सितम्बर को जर्मनों ने शहर के मध्य भाग पर अपना सघन आक्रमण चालू किया। वे पामायेव कुरगान नामक एक बड़ी पहाड़ी पर कब्जा कर लेना चाहते थे। इस ऊँचे स्थल से उनकी गोलन्दाज फौज न सिर्फ मज़दूरों की बस्तियों समेत पूरे शहर पर, बल्कि वोल्गा नदी की उन फेरी-नौकाओं पर भी निशाना साधने में समर्थ हो जाती जो बासठवीं सेना के लिए कुमुक और रसद-सामग्री लाने का काम करती थीं। लड़ाई भीषण थी। दो दिनों के भीतर, जर्मनों को 8,000 से 10,000 तक की संख्या में अपने सैनिकों से और 54 टैंकों से हाथ धोने पड़े। इस खूनी

(पेज 11 पर जारी)

महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन के जन्मदिवस (9 अप्रैल) और पुण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर
रूढ़ियों-अन्धविश्वासों, धार्मिक पाखण्डों-कर्मकाण्डों और हर प्रगतिविरोधी विचार और मूल्यों-मान्यताओं के विरुद्ध

चट्टान की तरह खड़ा एक महाविद्रोही

महाविद्रोही-महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन और कर्म अपने आप में उन बुद्धिजीवियों-साहित्यकारों की आलोचना है जो यह शेखी बघारते हैं कि उनका काम केवल जनता की दुर्दशा और क्रान्ति के बारे में कविता-कहानी-नाटक आदि लिखना है। व्यावहारिक राजनीतिक-सामाजिक कार्रवाई में उतरना उनका काम नहीं है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ जिले के छोटे से गाँव पन्दहा में केदारनाथ पाण्डेय के रूप में जन्मे राहुल ने बचपन में ही उस ठहरे हुए, रूढ़ियों में जकड़े समाज से विद्रोह किया और घर से भाग गये। 13 साल की उम्र में एक मठ के महन्त बने जहाँ हिन्दू धर्म के ढोंग-पाखण्ड और विकृतियों को नज़दीक से देखकर उनका मन विद्रोह कर उठा और वे आर्यसमाजी हो गये। लेकिन आर्यसमाज भी उनके व्याकुल मन को पूर्ण सन्तुष्टि नहीं दे सका। सत्य और मनुष्यता को हर प्रकार के शोषण-उत्पीड़न और दिमागी मुलामी के बन्धनों से मुक्ति की खोज उन्हें मार्क्सवाद तक ले आयी। मार्क्सवादी विचारधारा से परिचय ने सत्य की उनकी तलाश पूरी की। वे क्रान्तिकारियों और कम्युनिस्टों के सम्पर्क में आये और आज़ादी की लड़ाई में शामिल हो गये। इसके बाद वे आजीवन यूरोपीय पुनर्जागरण काल के महामानवों की तरह एक हाथ में कलम और दूसरे में तलवार लेकर जनमुक्ति संघर्ष के सच्चे सिपाही बने रहे।

इतिहास की प्रगति को रोकने वाली नकारात्मक परम्पराओं पर प्रचण्ड

प्रहार करना और रूढ़ियों की धज्जी उड़ाना राहुल के चिन्तन का केन्द्रबिन्दु था। हर तरह की शिथिलता, गतिरोध, तर्कहीनता, यथास्थितिवाद, पुनरुत्थानवाद और आगे के बजाय पीछे देखते रहने के वे कट्टर शत्रु थे। उन्होंने अपनी तेजाबी लेखनी से इन पर जबर्दस्त प्रहार किया है।

इक्कीसवीं सदी में खड़े होकर जब हम अपने समाज पर नज़र डालते हैं तो आज भी हमें वे अँधेरे कोने काफी बड़े पैमाने पर दिख जाते हैं जहाँ मानवता घुट-घुट कर मर रही है। कहीं किसी महिला को डायन बताकर मार दिया जाता है, किसी मनोकामना को पूरा करने के लिए शिशु बलि चढ़ा दी जाती है तो कहीं परायी जाति के युवक-युवतियों के बीच प्रेम सम्बन्ध होने पर बिरादरी की नाक का सवाल बनाकर दोनों को बर्बरतापूर्वक मार डाला जाता है। जाति-व्यवस्था के अमानवीय भेदभाव से भी हमारा समाज अभी पीछा छुड़ा नहीं पाया है। साम्प्रदायिक फासीवाद का राक्षस मुँह बाये खड़ा है। ऐसे में आज ग़रीब किसानों और मज़दूरों के राहुल ''बाबा'' बरबस याद आते हैं। याद आती है उनकी निर्भीक लेखनी और विद्रोही चेतना। भारतीय समाज को मौजूदा गतिरोध से बाहर निकालने के लिए क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन में लगे समूहों को राहुल के अधूरे मिशन को आगे बढ़ाने के लिए ठोस योजनाएँ बनाकर आगे बढ़ना होगा। यह एक नये क्रान्तिकारी पुनर्जागरण और प्रबोधन का जरूरी कार्यभार है जिसे पूरा किये बिना नयी जनक्रान्ति एक अधूरी-अपंग क्रान्ति होगी। राहुल के जन्मदिवस (9 अप्रैल) और पुण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर हम यहाँ उनकी दो प्रसिद्ध पुस्तिकाओं **'दिमागी गुलामी'** और **'तुम्हारी क्षय'** से कुछ उद्धरण दे रहे है।

–सम्पादक

''आँख मूँदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए!''

''ये धार्मिक महात्माओं के मठ और आश्रम ढोंग के प्रचार के लिए खुली पाठशालाएँ हैं, और धर्म प्रचार क्या है? यह पूरे सौ सैकड़े नफे का रोजगार है। अधिकांश लोग उसमें अपने व्यवसाय के ख्याल से जुटे हुए हैं।''

...

''जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन में ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे। ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ़ से फैलायी गयी हैं जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे ख्याल है धन बटोरकर रख देने या उसकी रक्षा का। ग़रीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुकसान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर जो ख्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नजर दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।''

...

''धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है, और इसलिए अब मजहबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखाना'- इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मजहब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हज़ार बरस से आजतक हमारा मुल्क पागल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों का खून का प्यासा कौन बना रहा है? कौन गाय खाने वालों से गाय न खाने वालों को लड़ा रहा है? असल बात यह है-'मजहब तो सिखाता ही है आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।' हिन्दुस्तान की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर होगी। कौए को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़कर इलाज नहीं है।''

...

''खेतिहर मज़दूरों को ख्याल रखना चाहिये कि उनकी आर्थिक मुक्ति साम्यवाद से ही हो सकती है, और जो क्रान्ति आज शुरू हुई है, वह साम्यवाद पर ले ही जाकर रहेगी। उसके सिवा भले दिनों को दिखाने वाला दूसरा कोई रास्ता नहीं है।''

...

''अज्ञान का दूसरा नाम ही ईश्वर है। हम अपने अज्ञान को साफ स्वीकार करने में शर्माते हैं, अत: उसके लिए सम्भ्रान्त नाम 'ईश्वर' ढूँढ़ निकाला गया है। ईश्वर-विश्वास का दूसरा कारण मनुष्य की असमर्थता और बेबसी है।

आये दिन हर तरह की विपत्तियों, प्राकृतिक दुर्घटनाओं, शारीरिक और मानसिक बीमारियों की असह्य वेदना सहते-सहते जब मनुष्य बचने का कोई रास्ता नहीं देखता, तब यह कहकर सन्तोष करना चाहता है कि ईश्वर की यही मर्जी है; वह हमारी परीक्षा ले रहा है, भविष्य के सुख को और भी मधुर बनाने के लिए उसने यह प्रबन्ध किया है। अज्ञान और असमर्थता के अतिरिक्त यदि कोई और भी आधार ईश्वर-विश्वास के लिए है, तो वह है धनिकों और धूर्तों की अपनी स्वार्थ-रक्षा का प्रयास। समाज में होते हजारों अत्याचारों और अन्यायों को वैध साबित करने के लिए उन्होंने ईश्वर का बहाना ढूँढ़ निकाला है। धर्म की धोखाधड़ी को चलाने और उसे न्याय साबित करने के लिए ईश्वर का ख्याल बहुत सहायक है।''

...

''दुनिया भर में 'सदाचार', 'सदाचार' चिल्लाया जा रहा है। हिन्दुस्तानियों को यह नहीं समझना चाहिये कि इसका ठेका सिर्फ उन्हीं को मिला है। यूरोप, अमेरिका, एशिया-सभी मुल्कों में इस पर जोर दिया जाता है, धर्म और ईश्वर पर विश्वास रखने वाले तो खास तौर से इसके लिए जमीन-आसमान एक करते हैं। लेकिन साथ ही सदाचार का जितना कम पालन धर्मानुयायी और ईश्वर भक्त करते हैं, जितनी अवहेलना उनके यहाँ इस नियम की होती है उतनी और जगह नहीं। ...क्या हमारे देश में ऐसे सदाचार की खिल्ली उड़ाने वाले सबसे ज्यादा हिन्दू-तीर्थ और हिन्दू-मठ नहीं हैं? अयोध्या में चले जाइये और वहाँ के बड़े से बड़े अवतारी भगवद्भक्त और सिद्ध-महात्मा को ले लीजिये, उनके बारे में भी पूछ लीजिये कि जिन्हें मरे अभी कुछ ही साल हुए हैं। मालूम होगा, सदाचार के सम्बन्ध में कैसे-कैसे वीभत्स काण्ड वहाँ होते हैं। ये स्थान स्वाभाविक ही नहीं, अस्वाभाविक व्यभिचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। बाहर से जाने वाली भोली-भाली जनता, जिन पर तप, ब्रह्मचर्य, सदाचार की साक्षात मूर्ति समझकर अपना तन-मन-धन वारती है, वे हैं जघन्य कामुकता के साक्षात अवतार। ऐसे आदमियों के मुँह से ब्रह्मचर्य और सदाचार के लम्बे-लम्बे उपदेश सुनकर तो हठात कहना पड़ता है-निर्लज्जता, तेरा बेड़ा गर्क हो।...''

...

''कानून और न्यायालय धनी के विरुद्ध ग़रीब को न्याय देने में कितने असमर्थ हैं, इसके लिये दूर के दृष्टान्त की जरूरत नहीं। भारत के हर एक गाँव में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। मामूली अपराध की तो बात ही क्या, खून तक पचा लिए जाते हैं। जमींदार या धनी के इशारे पर आम आदमी मारा गया। धनी आदमी ने रुपयों का तोड़ा खोलकर डॉक्टर के सामने रख दिया। डॉक्टर समझता है, दस बरस में जो कमायेंगे, वह सामने रक्खा है, घर आयी लक्ष्मी को ठुकराना ठीक नहीं। लिख देता है -दिल कमजोर था, चोट साधारण थी, आदि, और, मामला दूसरे से दूसरा हो जाता है। बहुत बार तो लाश को ले जाकर तुरन्त जला दिया जाता है और फिर भय और प्रलोभन से गवाहियाँ अपने पक्ष में बना ली जाती हैं। अक्सर ग़रीब आदमी अदालत तक नहीं जाते। अगर धनियों द्वारा किये गये तीन खून किसी थानेदार को मिल जायें तो उसका भाग्य ही खुल जाये। वह इतना रुपया जमा कर ले कि उसकी नौकरी चली भी जाये तो तो भी वह ज़िन्दगी भर चैन की वंशी बजाता रहेगा।''

''न्याय सस्ता और सुलभ नहीं है, बल्कि जबर्दस्त शत्रु के मुकाबले में वह दुनिया की सबसे महंगी चीज़ है। वह इतनी खर्चीली चीज़ है कि धनी आदमी हारते-हारते भी ग़रीब को उजाड़ देता है। बिना स्टाम्प का पैसा दिये तो ग़रीब अदालत में दर्खास्त भी नहीं दे सकता। और, फिर, स्टाम्प ही तो काफी नहीं है? वहाँ चाहिये वकील और मुख्तार को फीस, पेशकार और रिश्तेदार को नजराना, अर्दली और चपरासी को भेंट। जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी बड़े-बड़े वकीलों की बड़ी-बड़ी फीस देकर रख लेता है। यदि तुमने किसी टुटपुँजिया वकील को खड़ा किया तो बने मुकदमे के भी बिगड़ जाने की सम्भावना हो जाती है। घर, जमीन बेचो, जेवर बन्धक रक्खो, जैसे भी हो रुपया खर्च कर मुकदमे की पैरवी करो। अगर मुकदमा दीवानी में है और एक ही है तो फौजदारी मुकदमों की तो संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। मार-पीट, चराई आदि के कई मुकदमे साथ ही साथ फौजदारी अदालत में भी चल रहे हैं। मुन्सिफ के यहाँ अपील हुई। वहाँ से भी यदि किस्मत ने मदद की तो हाईकोर्ट और इसके बाद प्रीवी कौंसिल। फौजदारी मुकदमे अलग चल रहे हैं। यदि हर इजलास में खर्च करने के लिये तुम्हारे पास रुपया नहीं है तो तुम्हारी जीत भी हार में बदल जाती है।''

...

'इतिहास'-'इतिहास'-'संस्कृति'-'संस्कृति' बहुत चिल्लाया जाता है। मालूम होता है, इतिहस और संस्कृति सिर्फ मधुर और सुखमय चीजें थीं। पचीसों बरस का अपने समाज का तजरबा हमें भी तो है। यही तो भविष्य की सन्तानों का इतिहास बनेगा? आज जो अंधेर हम देख रहे हैं, क्या हज़ार साल पहले वह आज से कम था? हमारा इतिहास तो राजाओं और पुरोहितों का इतिहास है जो कि आज की तरह उस जमाने में भी मौज उड़ाया करते थे। उन अगणित मनुष्यों का इस इतिहास में कहाँ जिक्र है जिन्होंने कि अपने खून के गारे से ताजमहल और पिरामिड बनाये; जिन्होंने कि अपनी हड्डियों की मज्जा से नूरजहाँ को अतर से स्नान कराया, जिन्होंने कि लाखों गर्दनें कटा कर पृथ्वीराज के रनिवास में संयोगिता को पहुँचाया? उन अगणित योद्धाओं की वीरता का क्या हमें कभी पता लग सकता है जिन्होंने कि सन् सत्तावन के स्वतंत्रता-युद्ध में अपनी आहुतियाँ दीं? दूसरे मुल्क के लुटेरों के लिये बड़े-बड़े स्मारक बने, पुस्तकों में उनकी प्रशंसा का पुल बाँधा गया। गत महायुद्ध में ही करोड़ों ने कुर्बानियाँ दीं,लेकिन इतिहास उनमें से कितनों के प्रति कृतज्ञ है?

...

''आँख मूँदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार होना चाहिये। बाहरी क्रान्ति से कहीं ज्यादा जरूरत मानसिक क्रान्ति की है। हमें दाहिने-बायें, आगे-पीछे दोनों हाथ नंगी तलवार नचाते हुए अपनी सभी रूढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना चाहिये। क्रान्ति प्रचण्ड आग है, वह गाँव के एक झोपड़े को जलाकर चली नहीं जायेगी। वह उसके कच्चे-पक्के सभी घरों को जलाकर खाक कर देगी और हमें नये सिरे से नये महल बनाने के लिए नींव डालनी पड़ेगी।''

कविता

सहयोग

चोरी छिनौती में नहीं लिप्त थे वे
न रहज़नी डकैती में
महज़ कर रहे थे किसी तरह
एक बढ़ते हुए शहर में
बढ़ती हुई महंगाई की मार सहते हुए
ईमानदारी से रोज़ी-रोटी कमाने का जुगाड़

छोटे-छोटे ठेलों और जीवन की तरह नश्वर दुकानों पर
सजा हुआ था नश्वर सामान
चाय, पान, समोसे, पकौड़े और सस्ते मौसमी फल

शहर बढ़ रहा था
महंगाई बढ़ रही थी
बढ़ रहे थे उनके कुनबे
कारागार से भी ज़्यादा तंग
ज़्यादा सीली कोठरियों में
अच्छे दिनों की आशा सँजोये

बढ़ रही थीं ज़मीनों की क़ीमतें
ठेकेदारों और बिल्डरों की हवस
नगरपालिका और विकास प्राधिकरण के अफ़सरों की रिश्वतें
तभी एक दिन अचानक
ठिड्डियों के दल की तरह
उन पर टूट पड़े कर्मचारी नगर निगम के

नवाब यूसुफ रोड जहाँ आ कर
पानी की टंकी के पास ज़रा-सा घूम कर
मिलती है कानपुर रोड में
वहीं खड़ी थी वह दैत्याकार मशीन
जिसे बनाया था
अमरीका की विश्व प्रसिद्ध कैटरपिलर कम्पनी ने
ज़मीन को साफ़ और समतल करने के लिए
ताकि उग सकें उस पर फ़सलें
बन सकें घर
जन्म ले सकें सपने और आशाएँ और जीवन

यहाँ लेकिन साफ़ कर रही थी वह बेरहमी से
जीवन और सपने और आशाएँ
विकास प्राधिकरण के सहयोग से
नगर निगम के कर्मचारियों के निर्देशन में

ऐसे ही सहयोग पर टिके हुए हैं
बिल्डर और ठेकेदार
नगर निगम और विकास प्राधिकरण
ऐसे ही सहयोग पर टिकी हुई है।
बुश और मनमोहन सिंह की सरकारें

राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित कुछ नयी पुस्तकें

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

भारतीय कृषि में पूँजीवाद का विकास
सुखविन्दर *30.00*

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा
डॉ. दर्शन खेड़ी *5.00*
लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस *30.00*
संशोधनवाद के बारे में *5.00*
शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी *10.00*
मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा *10.00*

ज्वलन्त प्रश्न

'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं
रंगनायकम्मा *125.00*

हिटलर को दरअसल किसने हराया...

(पेज 9 से आगे)

संघर्ष में एक प्रमुख ठिकाने पर पाँच दिनों के भीतर पन्द्रह बार कब्जा कर पाने में जर्मन नाकामयाब ही रहे।

जर्मनी में नाजी अखबार अपने विशेष संस्करण निकालकर उनमें पहले ही से यह शीर्षक छाप चुके थे : ''स्तालिनग्राद का पतन हो गया!''–लेकिन उनका वितरण रोक देना पड़ा। जर्मनों का बढ़ना रोकने के लिए हजारों लाल योद्धाओं ने अपनी जानें गँवा दीं। उनके बलिदान ने ही पूरे शहर में उनके कामरेडों को कई दिनों का बहुमूल्य समय प्रदान किया ताकि वे बार-बार समूहबद्ध हो सकें, और खाइयाँ खोद सकें।

24 सितम्बर तक स्तालिनग्राद का अधिकांश भाग दुश्मनों के हाथ में जा चका था और कई-कई मील तक आग की लपटों में स्वाहा हो चुका था। जर्मनों की छठवीं सेना का भी दस प्रतिशत हिस्सा नष्ट हो चुका था, और अभी भी शहर के उत्तरी फैक्टरी-क्षेत्रों के इर्दगिर्द प्रतिरोध का अटूट सिलसिला जारी था। वोल्गा पार करके आने वाली ज्यादातर सोवियत कुमुकों में सोवियत एशिया के सीमावर्ती क्षेत्र के किशोर शामिल थे।

14 अक्टूबर को जर्मनों ने एक अन्तिम विनाशकारी आक्रमण किया–जिसमें सोवियत ठिकानों पर बमबारी करने के लिए 3,000 बमबारी विमान भेजे गये, और उसी के साथ ही जर्मन पैदल सेना की तीन और टैंक सेना की दो डिविजनों ने भी हमला कर दिया। 30 अक्टूबर तक, बासठवीं सेना के कब्जे में वोल्गा के किनारे के मात्र तीन छोटे-छोटे क्षेत्र ही बच रह गये, फिर भी जर्मन उसे शिकस्त नहीं दे सके।

जर्मन टैंक सेना के एक अधिकरी ने लिखा : ''हम लोगों को मात्र एक घर के लिए पन्द्रह दिनों से मॉर्टर तोपों, ग्रेनेडों, मशीनगनों और संगीनों के साथ लड़ना पड़ रहा है। और तीसरे ही दिन तक स्थिति यह हो चुकी थी कि चौवन जर्मन लाशें तहखानों में, चौकियों पर और सीढ़ियों पर बिखर चुकी थीं। मोर्चा जले हुए कमरों के बीच का एक गलियारा बना हुआ है, यह दो मंजिलों के बीच की एक पतली छत पर है। मदद सिर्फ पड़ोसी घरों के धुंवाकशों और चिमनियों के जरिये ही मिल पा रही है। दोपहर से लेकर रात तक लगातार लड़ाई जारी रह रही है। हम पसीने से धुंधलाये चेहरे लिये, एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर, हथगोलों से एक-दूसरे पर वार कर रहे हैं और उनके फूटने से धूल और धुएँ के बादल उठ रहे हैं...। कोई भी सैनिक बता सकता है कि एक ऐसी लड़ाई में जो आमने-सामने का संघर्ष होता है उसका क्या मतलब है। और जरा स्तालिनग्राद के बारे में सोचिए : 80 दिन और 80 रात आमन-सामने लड़ाई...। अब स्तालिनग्राद एक शहर नहीं रह गया है। यह धधकती ज्वाला और अंधकारी धुएँ का विराट बादल बन चुका है, यह एक ऐसी विराट भट्टी बन चुका है जिससे लपटें उठ रही हैं। और जब रात आती है-जो कि झुलसा देने वाली, चीख-पुकार भरी और खून से नहायी हुई ही होती है-तब कुत्ते वोल्गा नदी में कूद पड़ते हैं और दूसरे किनारे पर पहुँचने की हड़बडी में तैरने लगते हैं। स्तालिनग्राद की रातें तो उनके लिए आतंक ही हैं; जानवर इस नर्क से भाग रहे हैं: कठिन से कठिन तूफान भी उसे लम्बे समय तक नहीं झेल सकता केवल मनुष्य ही झेलते हैं।''

एक और जर्मन आक्रमण 11 नवम्बर को शुरू किया गया जिसमें एक-एक गज़ भूमि के लिए, एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर के लिए लड़ाई चलती रही। एक दिन इसी आक्रमण के दौरान, यानी 12 नवम्बर को ही, जर्मन सेना को यह महसूस हो गया कि महीनों विकट संघर्ष करते-करते उनकी पूरी शक्ति निचुड़ चुकी थी।

(अगले अंक में जारी)

नई क्रान्ति की राह पर...

(पेज 8 से आगे)

कठिन और निचोड़ने वाला काम करने वाले मज़दूर भी थे। कुछ छात्रों ने भी इस कार्यक्रम में शिरकत की और आज भगतसिंह की प्रासंगिकता पर ज्वलन्त सवाल किये। अनौपचारिक ढंग से हुई इस विचार-गोष्ठी में लगभग सभी लोगों ने अपनी बात रखी।

सभा के बाद इसके अमली निष्कर्ष के रूप में यानी भगतसिंह के शब्दों में 'क्रान्ति की अलख झुग्गी-झोपड़ियों, कल-कारखानों, शहरों-कस्बों' तक पहुँचाने के लिए एक जुलूस निकाला गया। सेक्टर 8, 9 व 10 की झुग्गियों में नारे लगाते हुए और जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ करते हुए जुलूस सेक्टर 9 के पास एक बड़ी आम सभा के रूप में समाप्त हुआ। इस दौरान 'भगतसिंह का ये पैगाम, जागो मेहनतकश अवाम', भगतसिंह ने दी आवाज, बदलो-बदलो देश समाज' और 'भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चुनो' आदि नारों से माहौल गरमा गया। सभा के बाद उत्साही नौजवान मज़दूरों ने कार्यकर्त्ताओं से इसका मकसद स्पष्ट करने को कहा और आगे भी बातचीत के लिए अपने पते-संपर्क दिये।

गोरखपुर : संकल्प सभा एवं विचार गोष्ठी

गोरखपुर, 23मार्च। ''इक्कीसवीं सदी भगतसिंह के सपनों को पूरा करने वाली सदी होगी। इस सदी में युवा पीढ़ी मेहनतकश जनता के साथ मिलकर आततायी साम्राज्यवादी-पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वंस करेगी, मानवता के भविष्य के बन्द दरवाज़ों को खोलेगी और शोषणविहीन-समतामूलक समाज बनाने का भगतसिंह का सपना पूरा करेगी।'' ये विचार भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव के 77वें शहादत दिवस पर आयोजित विचार गोष्ठी में मुख्य वक्ता **'दायित्वबोध'** के सम्पादक अरविन्द सिंह ने व्यक्त किये। बिछिया जंगल तुलसी राम के प्राथमिक पाठशाला में आयोजित विचार-गोष्ठी का विषय था–'इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह।'

अरविन्द सिंह ने कहा कि भूमण्डलीकरण विश्व पूँजीवाद के लिए संजीवनी बूटी नहीं नीम-हक़ीमी नुस्खा है। इस नुस्खे के सहारे पूँजीवाद को अजर-अमर नहीं बनाया जा सकता। साम्राज्यवादी दुनिया के चौधरी अमेरिका की घरेलू अर्थव्यवस्था आज जिस गहरे संकट के भँवर में उलझी हुई है वह इसी सच्चाई का प्रमाण है। उन्होंने नौजवानों का आह्वान किया कि वे तरह-तरह के रूप-रंग वाले भगतसिंह के नक़ली वारिसों को खारिज करें और उनकी क्रान्तिकारी वैचारिक विरासत की पहचान कर पूँजीवाद-साम्राज्वाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति का परचम ऊँचा उठायें।

विचार गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए कथाकार मदन मोहन ने कहा कि इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह का सपना पूरा होगा या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि युवा पीढ़ी अतीत की क्रान्तिकारी विरासत को किस हद तक आत्मसात करती है। उन्होंने कहा कि इक्कीसवीं सदी में क्रान्ति की नई राह वही खोज सकता है जो बीसवीं सदी की महान मज़दूर क्रान्तियों की विरासत को रचा-पचा कर आगे बढ़े हैं। गोष्ठी का विषय-प्रवर्तन दिशा छात्र संगठन की विश्वविद्यालय इकाई के संयोजक प्रशान्त ने किया। गोष्ठी का संचालन करते हुए नौजवान भारत सभा के प्रमोद ने किया। गोष्ठी में काफी संख्या में बिछिया मुहल्ले के युवा उपस्थित थे। दिशा छात्र संगठन ने भगतसिंह चौक पर संकल्प सभा का आयोजन कर शहीदों के सपनों को पूरा करने का संकल्प लिया।

 पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2006-08

गोरखपुर में ग़रीबों को बन्धक बनाकर उनका खून बेचने का धन्धा

इन ग़रीबों का ख़ून पीने वाले असली राक्षस को पहचानना होगा!

देश की राजधानी से सटे गुड़गाँव में एक डॉक्टर और उसके गिरोह द्वारा सैकड़ों ग़रीबों की किडनी चुराकर देशी-विदेशी धनपतियों को बेचने की घटना अभी पुरानी भी नहीं पड़ी थी कि ग़रीब मज़दूरों का ख़ून चुराकर बेचने के भयानक धन्धे के भण्डाफोड़ ने इस बात को अक्षरश: साबित कर दिया कि पूँजीवादी समाज मेहनतकशों का ख़ून पीकर ही पनपता है। गोरखपुर में एक आपराधिक गिरोह कई वर्षों से नौकरी का झाँसा देकर ग़रीबों को अपने जाल में फँसाकर बन्धक बनाता रहा और उनका ख़ून निकालकर शहर के नामी निजी अस्पतालों को बेचता रहा। उनसे इस कदर ख़ून निचोड़ा जाता था कि कम से कम तीन व्यक्तियों की तो मौत हो गई और पुलिस को घटना स्थल पर मिले सत्रह इंसान भी जिन्दा लाशें भर रह गये थे।

एक के बाद एक ऐसी घटनाएँ इंसानी संवेदना पर हथौड़े की चोट करती हैं और हर संवेदनशील व्यक्ति को एकबारगी झकझोर कर रख देती हैं। पर हमें सोचना यह होगा कि ऐसी तमाम घटनाओं की जड़ें आखिर कहाँ हैं। सवाल गोरखपुर की इस एक घटना का नहीं है। सवाल यह है कि इतने बड़े पैमाने पर एक के बाद एक होने वाली ऐसी बर्बर घटनाएँ क्या बताती हैं? नोएडा के निठारी में एक धनपशु ग़रीबों के बच्चों को अपनी हवस का शिकार बनाने के बाद उनके टुकड़े-टुकड़े करके नाले में फेंक देता है और यह सिलसिला वर्षों तक चलता रहता है। डॉक्टरों का एक गिरोह देश के प्रतिष्ठित किडनी विशेषज्ञ डॉक्टरों को मिलाकर देशव्यापी जाल बिछाकर ग़रीबों की किडनियाँ चुराकर बेचता रहता है। एक ही दिन चेन्नई और दिल्ली के बड़े अस्पतालों में इनक्यूबेटर में नवजात बच्चे जल कर मर जाते हैं। कहीं फीस न चुका पाने के कारण हफ्तों तक अस्पताल में मरीज को बन्धक बनाकर रखा जाता है तो कहीं अस्पताल से डॉक्टरों द्वारा धक्के मारकर निकाल दी गयी ग़रीब औरत सड़क पर बच्चे को जन्म देती है और वहीं तड़पकर मर जाती है। अस्पतालों के बरामदों में ग़रीबों का मरना तो एक सामान्य रोजमर्रा की घटना बन चुकी है।

गोरखपुर की घटना को इन सबसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। यह महज चार-पाँच आपराधिक व्यक्तियों का कारनामा नहीं है। अगर वे मज़दूरों को बन्धक बनाकर, बिना किसी जाँच के, रक्तदान के तमाम नियम-कायदों को ताक पर रखकर, हफ्ते में तीन-तीन, चार-चार बार उनका खून निकालकर बेचते थे, तो उस खून को खरीदता कौन था? खून खरीदने वाले थे शहर के पाँच प्रतिष्ठित पैथोलोजी सेण्टर और ब्लड बैंक और अनेक नामी नर्सिंग होम। हर कोई जानता है कि खून लेने और उसे रखने के लिए भी कड़े मानक निर्धारित हैं। सामान्य-सी जाँच से यह साफ हो जाता कि जो खून लिया जा रहा है वह किसी मानक का पालन नहीं करता और न सिर्फ यह खून देने वालों के लिए खतरनाक है बल्कि जिन मरीजों को यह खून चढ़ाया जाएगा उनकी जान को भी खतरा है। फिर भी वर्षों तक, हज़ारों मरीजों को यही खून चढ़ाकर उनकी जान के साथ भी खिलवाड़ जारी रहा। तय है कि इन नर्सिंग होमों को चलाने वाले सफेदपोश लोगों की पूरी जानकारी और मिलीभगत के बिना और नेताशाही-अफसरशाही के ढाँचे में बैठे सरपरस्त लोगों के बिना यह धन्धा चल ही नहीं सकता था। इन नर्सिंग होमों के मालिकान भी इस गुनाह के बराबर के भागीदार हैं। जिन डॉक्टरों की जानकारी में ऐसा खून सैकड़ों-हजारों मरीजों को चढ़ाया जाता रहा वे भी बराबर के गुनहगार हैं। और वे इस समाज के प्रतिष्ठित नागरिक हैं। हो सकता है कि वे किसी "समाजसेवी" संस्था या रोटरी या लायन्स क्लब या फिर किसी एनजीओ के मानिन्द सदस्य भी हों।

हमारे इस सामाजिक ढाँचे में डॉक्टरी का पेशा अब इंसान की जान बचाने वाला दुनिया का सबसे उदात्त पेशा नहीं रह गया है। ग़रीबों की नब्ज़ टटोलने से ज्यादा डॉक्टर उनकी जेब टटोलते हैं और उन्हें पूरी तरह निचोड़ डालने की फिराक में रहते हैं। डॉक्टर बनते समय ली जाने वाली शपथ का कोई मतलब नहीं रह गया है। जब डॉक्टर बनने के लिए तीस से पचास लाख रुपये खर्च होंगे और चारों तरफ पैसा कमाने की अन्धी होड़ का ही राज होगा तो डॉक्टरी का पेशा भी इंसानियत की सेवा के बजाय महज पैसा बटोरने के लिए किया जाने वाला एक व्यवसाय बन जाये तो इसमें हैरानी क्या!

सवाल एक डॉक्टर का नहीं है। जिस व्यवस्था के भीतर थैलीशाह मज़दूरों का खून चूसकर और उनकी हड्डियों का पाउडर बनाकर बेच डालते हों, जहाँ 12-12, 14-14 घण्टे हाड़तोड़ मेहनत के बाद इतनी दिहाड़ी भी नहीं मिलती कि मज़दूर दो वक्त पेट भरकर खाना खा सकें, जिस व्यवस्था के भीतर सरकारें तरक्की के नाम पर ग़रीबों की खुली लूट-खसोट के कानून बनाती हैं, जहाँ तरक्की का पैमाना यह हो कि ग़रीबों के आँसुओं और खून के महासागर में बने अमीरी के टापुओं पर ऐयाशी की मीनारें कितनी जगमगाती हैं, जहाँ मुनाफा कमाने के लिए हर किस्म की तिकड़में जायज़ समझी जाती हैं, उस व्यवस्था के भीतर ऐसे लोग पैदा होते ही रहेंगे जो पैसा कमाने के पागलपन में किसी भी हद तक जा सकते हैं।

इंसानी गोश्त और खून के सौदागरों की जमात में गोरखपुर का यह खूनचुसवा गिरोह तो महज एक छोटा सा प्यादा है। किसी ने ठीक ही कहा है कि यह पूँजीवादी व्यवस्था अपने आप में एक रोग है!

ये घटनाएँ भगतसिंह की इस चेतावनी को बार-बार सही साबित करती हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था ज्वालामुखी के मुँह पर बैठी हुई है। जिस सामाजिक ढाँचे में आम इंसान की जान की कोई कीमत न हो, जहाँ कुछ लोग चन्द सिक्कों के लालच में बर्बरता और अमानवीयता की किसी भी हद को पार कर सकते हों, जहाँ ऐसे घिनौने कामों को संरक्षण देने वाले समाज के सभ्य और गणमान्य चेहरे माने जाते हों ऐसा समाज मानवता की छाती पर बोझ ही हो सकता है।

हम शहर के नागरिकों से कहना चाहते हैं कि इस सड़ते हुए समाज में ऐसी घटनाएँ तो सामने आती ही रहेंगी। सवाल हमारे और आपके सोचने का है। इंसानी गोश्त और खून के सौदागर, हमारे बच्चों के भविष्य और सपनों के हत्यारे कदम-कदम पर घात लगाये बैठे हैं। मगर सबसे खतरनाक बात यह है कि हमारे लिए हर चीज़ धीरे-धीरे सामान्य बात होती जा रही है। हम हर चीज़ बरदाश्त करने के आदी होते जा रहे हैं। ऐसी बर्बर घटनाओं को भी लोग कुछ घण्टों या कुछ दिनों में भूल जाते हैं। धीरे-धीरे यह घटना भी अखबार की सुर्खियों से गायब हो जायेगी और फिर हमारी स्मृतियों से भी-तबतक, जबतक कि कोई नयी बर्बरता हमें एक बार फिर झकझोर न दे। यह भी तय है कि इस आपराधिक गिरोह के लोग कुछ वर्षों में या तो बेदाग़ बरी हो जायेंगे या छोटी-मोटी सज़ाएँ काटकर फिर से ऐसी ही किसी धन्धे में लग जायेंगे। इन्हें संरक्षण देने वाले सफेदपोश नेताओं और अफसरों, नर्सिंग होमों के मालिकों और डॉक्टरों के चेहरे कभी सामने नहीं आयेंगे और अगर कुछ चेहरे सामने आये भी तो चन्द एक वर्षों में पैसे की ताकत से धुल-पुँछकर फिर साफ हो जायेंगे।

लड़ाई सिर्फ इस बात की नहीं है कि इन अपराधियों को कड़ी सज़ा मिले और इनके पीछे के सफेदपोश चेहरे बेनक़ाब किये जायें या रक्त और अंगदान के सरकारी नियम-कानून ऐसे बनें जिससे ग़रीबों का इस प्रकार शोषण बन्द हो सके। सवाल इस बात पर भी सोचने का है कि जिस समाज में कोई ग़रीब जीने के लिए अपना खून निचुड़वाने के लिए तैयार हो जाये, जिस समाज में करोड़ों इंसान जानवर से भी बदतर हालात में जीने पर मजबूर हों, जहाँ निरन्तर ऐसे लोग पैदा हो रहे हों जो पैसा बटोरने की हवस में हैवानियत की सारी हदें पार कर जायें, क्या उस समाज को नष्ट कर नया समाज बनाने की लड़ाई नहीं छेड़ देनी चाहिए। यही समय है कि हम इन बड़े सवालों पर भी सोचें और जरूर सोचें। रास्ता जरूर निकलेगा। हमें रास्ता निकालना ही होगा।

-'दिशा' और नौजवान भारत सभा द्वारा गोरखपुर में बाँटा गया पर्चा

रेलवे प्रेस की बन्दी का आदेश

यूनियनों की समझौतापरस्ती से आम कर्मचारी मायूस

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर। रेलवे बोर्ड ने गोरखपुर रेलवे प्रेस सहित सभी रेलवे प्रेसों की बन्दी का आदेश जारी कर दिया है। इससे आम कर्मचारियों में बेहद आक्रोश है। वे अपने भविष्य को लेकर तरह-तरह की आशंकाओं के बीच झूल रहे हैं। वे आर-पार की लड़ाई लड़ने के मूड में हैं लेकिन यूनियनों की समझौता परस्ती से बेहद मायूस हैं।

गोरखपुर रेलवे प्रेस में फिलहाल लगभग पाँच सौ कर्मचारी कार्यरत हैं। पहले यह संख्या और अधिक थी लेकिन खाली पड़े पदों पर भर्ती न होने से संख्या लगातार कम होती गयी। अब बन्दी के इस आदेश के बाद कर्मचारियों का समायोजन कहाँ किया जायेगा उनकी मूल चिन्ता यही रह गयी है क्योंकि अपनी यूनियनों पर उन्हें यह भरोसा नहीं है कि वे रेलवे बोर्ड और सरकार से आर-पार की लड़ाई लड़ने की हिम्मत जुटा पायेंगीं।

गोरखपुर के अलावा लखनऊ, दिल्ली, कोलकाता, और मुम्बई (यहाँ दो इकाइयाँ हैं) में रेलवे प्रेस की शाखाएँ हैं जहाँ कुल मिलाकर सात-आठ हजार कर्मचारी काम करते हैं। एक रेलवे प्रेस कर्मी ने इस संवाददाता को बताया कि इन सभी जगहों पर कर्मचारी लड़ने के मूड में हैं लेकिन यूनियनें संघर्ष के नाम पर केवल थोथी कवायदें कर रही हैं। वह तेवर नज़र नहीं आ रहा कि किसी जुझारू संघर्ष की उम्मीद पाली जाये।

पिछले दिनों यूनियनों की मान्यता के लिए जो चुनाव हुए उसमें पूर्वोत्तर रेलवे (एन ई आर) को छोड़कर शेष सभी जोनों में ऑल इण्डिया रेलवे मेन्स फेडरेशन (ए आई आर एफ) को जीत मिली। एन ई आर में भारतीय मज़दूर संघ से सम्बन्ध एन ई रेलवे श्रमिक संघ को विजय मिली। रेलवे बोर्ड के इस निर्णय के विरुद्ध कर्मचारियों का जुझारू संघर्ष संगठित करने की प्रमुख जिम्मेदारी ए आई आर एफ की बनती है। लेकिन उसके नेताओं के रवैये और उनके पुराने इतिहास को देखते हुए ऐसा नजर नहीं आ रहा कि वे किसी गम्भीर लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं।

उनके रवैये की असलियत जानने के लिए एक वाकये के बारे में जानना दिलचस्प होगा। एन. ई. आर. मेन्स यूनियन ('नरमू'-एआईआरएफसे सम्बद्ध) के आह्वान पर रेलवे प्रेस के सामने पाँच दिवसीय क्रमिक भूख हड़ताल की घोषणा हुई थी। गोरखपुर में प्रेसकर्मियों के इस संघर्ष को समर्थन देने के लिए जब दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता पहुँचे तो यूनियन की प्रेस शाखा के पदाधिकारियों ने अत्यन्त बेरुखी दिखायी। इस सम्बन्ध में जब एक कार्यकर्ता ने 'नरमू' के महामंत्री के. एल. गुप्ता से बात की तो उनका जवाब और भी दिलचस्प था। उन्होंने कहा कि आपलोगों के आन्दोलन में आने से संघर्ष का रंग बदल जायेगा। इस पर उस कार्यकर्ता ने कहा कि संघर्ष का रंग गाढ़ा करना तो आज वक्त की जरूरत है। इस पर महामंत्री जी कन्नी काटकर बात पूरी किये बिना बेरुखी से आगे बढ़ गये।

'नरमू' पदाधिकारियों के इस रवैये से ही समझा जा सकता है कि कर्मचारियों के असन्तोष पर पानी के छींटे डालने के लिए संघर्ष की कवायद की जा रही है। एक रेलवे प्रेस कर्मी ने बिगुल संवाददाता को साफ शब्दों में बताया कि उसके नेता पहले से ही बिक गये हैं। उसने ए. आई. आर. एफ के सिकन्दराबाद अधिवेशन का एक किस्सा भी इस संवाददाता को सुनाया। उसके अनुसार सिकन्दाबाद अधिवेशन में नेताओं के विश्वासघात के विरुद्ध कर्मचारियों में आक्रोश इतना प्रचण्ड था कि उन्होंने एआईआरएफ के केन्द्रीय पदाधिकारियों उमराव मल पुरोहित और जे. पी. चौबे की मंच पर चढ़ने ही नहीं दिया। इसी असन्तोष की भाँपकर संघर्ष की रस्म अदायगी की जा रही है।

रेलवे की अन्य यूनियनों ने प्रेस की बन्दी के खिलाफ अलग-अलग आवाज़ उठानी शुरू की है। लेकिन संघर्ष को जुझारू तभी बनाया जा सकता है जब सभी यूनियनें अपने संकीर्ण स्वार्थों को छोड़कर एक मंच पर आयें और आम कर्मचारियों की व्यपक एकजुटता कायम करते हुए इसे रेलकर्मियों के संघर्ष के साथ ही व्यापक सामाजिक आन्दोलन में बदल दें। छठे वेतन आयोग की सिफारिशें आने के बाद रेलवे के सभी तकनीकी-गैर तकनीकी कर्मचारियों में जो आक्रोश है वह व्यापक एकजुटता का आधार बन सकता है। व्यापक और जुझारू एकजुटता के ज़रिये ही इस लड़ाई को कामयाबी की मंजिल तक पहुँचाया जा सकता है। यह लड़ाई कठिन इसलिए भी है कि यह निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के खिलाफ है। रेलवे बोर्ड ने इस आदेश के ज़रिये डॉ. राकेश मोहन कमेटी की सिफारिशों को पिछले दरवाजे से लागू कर रही है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : **डा. दूधनाथ, सुखविन्दर** ● सम्पादकीय पता : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006** ● सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ